महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६३ अंक : ०९

दयानन्दाब्द: १९७

विक्रम संवत्: वैशाख कृष्ण २०७८

कलि संवत्: ५१२२

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२२

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.

पाँच वर्ष-१२०० रु.

आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.

एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर

द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर

त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर

आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.

एक प्रति - ३ पाउण्ड

एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

मई प्रथम २०२१

अनुक्रम

०१. सांस्कृतिक शब्दों की साज़िश...	सम्पादकीय	०४
०२. अग्नि सूक्त-०५	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. मनु की देन	स्व. पं. भगवद्दत्त	१५
०५. वज्र से कठोर तथा फूल से कोमल...	कन्हैयालाल आर्य	२३
०६. विद्यार्थी जीवन	ब्र. प्रताप	२७
०७. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		२९
०८. संस्था की ओर से...		३१
०९. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

सांस्कृतिक शब्दों की साज़िश

सांस्कृतिक विकृति के लिए पाश्चात्य लेखकों की शब्दों की साज़िश

व्याकरण महाभाष्यकार आचार्य पतञ्जलि ने शब्दार्थ की शक्ति और गम्भीरता पर विचार व्यक्त करते हुए अपने व्याकरणशास्त्र में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण, मनोवैज्ञानिक और नीतिबोधक कथन प्रस्तुत किया है-

''एकःशब्दःसम्यग्ज्ञातःसुप्रयुक्तःस्वर्गे लोके च कामधुक् भवति।''

(प्रथम आह्निक)

अर्थात्- 'कोई भी शब्द भलीभाँति जाना हुआ, सही प्रयोग किया हुआ, सुखदायक उद्देश्य में और लोक में अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति करने वाला होता है।'

अर्थापत्ति नामक प्रमाण के आधार पर इसका दूसरा अर्थ यह निकलता है कि 'ज्ञानपूर्वक प्रयुक्त किया हुआ प्रत्येक शब्द दु:खदायक उद्देश्य में भी और लोक में अभीष्ट प्रयोजन को पूर्ण करने वाला होता है।'

शब्दों की ऐसी-ऐसी साज़िशें, इस प्रयोजन से कि जिससे प्राचीन भारतीय संस्कृति का स्वरूप विकृत हो जाये और भारत के लोगों की अपनी संस्कृति के प्रति स्थापित सकारात्मक सोच बदल जाये, पाश्चात्य लेखकों ने प्राचीन शास्त्रों के भाष्य और अनुवाद के माध्यम से खूब की हैं। कहना न होगा कि वे सोच को बदलने में सफल भी हुए हैं। आज अधिकांश शिक्षितों की वही धारणाएँ बनी दिखाई पड़ रही हैं जो पाश्चात्य लेखक बनाना चाहते थे। ऐसे कुछ शब्दों के सन्दर्भ इस लेख में प्रदर्शित किये जा रहे हैं जिन्होंने सोच को बदला है।

सबसे पहले हम 'धर्म' शब्द को लेते हैं। धर्म शब्द की जो सुन्दरतम, मानवीय, उन्नत और व्यापक अवधारणा पुरातन भारतीय साहित्य और संस्कृति में मिलती है वैसी विश्व के किसी अन्य साहित्य एवं संस्कृति में कहीं नहीं मिलती। प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के अनुसार, धर्म मानवीय और उन्नत जीवन जीने की शैली है। मानवता को विकसित करनेवाले आचरण के लिए धारण करने योग्य जितने भी गुण हैं, जैसे- कर्तव्य, मर्यादा, सदाचरण, नैतिकता, कानून का पालन आदि, उन सब को धर्म कहा जाता है। धर्म, मनुष्य कहानेवाले दो हाथ पैर के प्राणी को पशुत्व से उभारकर मानव बनाने का माध्यम है। धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का संरक्षक है। इन कथनों की पुष्टि के लिए मनुस्मृति, महाभारत और वैशेषिक दर्शन के उद्धरण स्मरणीय हैं। मनुस्मृति निम्नांकित सात्विक गुणों को धारण करने से मनुष्य को धार्मिक मानती है-

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

(६/९२)

अर्थात्- विपत्ति में धैर्य रखना, किसी से अप्रिय व्यवहार हो जाने पर उसको क्षमा कर देना, मन का वशीकरण, किसी भी प्रकार की चोरी न करना, तन-मन की पवित्रता, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना, सुबुद्धि का विकास करना, ज्ञान की अभिवृद्धि, सत्य-आचरण, क्रोधरहित व्यवहार रखना, ये दश धर्म के लक्षण हैं; अर्थात् इनके होने से मनुष्य धार्मिक होता है। यह धार्मिक मनुष्य की जीवन शैली है। क्या धर्म के नाम पर मनुष्य को इन गुणों का त्याग कर देना चाहिए? क्या धर्मनिरपेक्षता की आड़ में कोई इन गुणों से हीन होकर सभ्य एवं सुसंस्कृत मनुष्य कहला सकता है? कभी भी नहीं। महाभारत में धर्म की व्याख्या को व्यावहारिक विस्तार देते हुए इस प्रकार परिभाषित किया है-

धारणाद्धर्म इत्याहुःधर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्यात् धारणसंयुक्तःसःधर्मःइति निश्चयः।।

(शान्तिपर्व ११०/१११)

अर्थात्- धारण करने योग्य श्रेष्ठ आचरण को धर्म कहते हैं। धर्म वह है जो प्रजा को धारण करता है, क्योंकि वह समाज को धारण रखता है, इस कारण उस तत्त्व को धर्म कहते हैं। वैशेषिक दर्शन ने धर्म की और भी सुन्दरतम

परिभाषा देते हुए लिखा है-

यतोऽभ्युदयनैःश्रेयससिद्धिःसःधर्मः।

(१/१/२)

अर्थात्- जिससे इस जन्म में सर्वतोमुखी उन्नति हो और परजन्म में मोक्षप्राप्ति भी हो सके, ऐसे धारणीय श्रेष्ठ आचरण को धर्म कहते हैं।

विश्व में ऐसे आचार-विचार पर कहीं चिन्तन नहीं हुआ। पाश्चात्य जगत् में लोकोपकारक शाश्वत धर्म की कोई अवधारणा कभी नहीं रही, अतः उसका बोधक कोई शब्द भी प्रचलित नहीं था। इसके बदले वहाँ रिलीजन (Religion) शब्द प्रचलित है, जिसके संकीर्ण अर्थ सम्प्रदाय, पन्थ, मजहब हैं। पाश्चात्यों ने हमारे धर्म का रिलीजन अनुवाद करके उसे संकीर्णार्थक बना दिया और इस प्रकार उस का अवमूल्यन कर दिया। साम्प्रदायिक दंगों को धार्मिक दंगे, धार्मिक कलह, धार्मिक मतभेद कहकर धर्म को निन्दित विचार प्रचारित कर दिया। अत्युत्तम मानवीय अर्थसम्पन्न धर्म शब्द का अर्थ-पतन करके उसको अल्पज्ञों में अपमानित और अग्राह्य बना दिया। सत्यार्थ से अनभिज्ञ लोगों ने यह विचार भी नहीं किया कि जो धर्म श्रेष्ठ है वह दंगों, कलह, मतभेदों आदि श्रेष्ठविरोधी करतूतों का पर्याय कैसे हो सकता है? धर्म के गलत अर्थ का इतना दुष्प्रचार हुआ है कि आज उसका सही अर्थ समझाने के लिए अलग से प्रयास करने पड़ रहे हैं।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर और संविधान सभा ने संविधान में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जोड़ना उचित नहीं माना था, क्योंकि वे इसके दुष्प्रभावों को समझ गये थे। किन्तु उसके बाद, प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी के कार्यकाल में, संविधान में सेक्युलर अर्थात् धर्मनिरपेक्ष शब्द जोड़ देने से इस हानिकर विचार का प्रचार और अधिक बढ़ गया। धर्मनिरपेक्ष शब्द के अनर्थ की भ्रान्ति के कारण भारत के लोग प्रत्येक आदर्श, कर्त्तव्य, सदाचरण, नैतिकता से दूरी बनाते गये। इस प्रकार संवैधानिक प्रयोग ने धर्मविषयक सोच को बदल दिया। भारतीय साहित्य-संस्कृति के अत्युत्तम विचार धर्म को एक उपेक्षित विचार बना दिया। श्रेष्ठ आचार-विचारमूलक धर्म से कोई व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र निरपेक्ष कैसे हो सकता है? कदापि नहीं और यदि हो गया तो, समाज में उसका क्या दुष्परिणाम निकलेगा, इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है। सन्तोष का विषय है कि अनुवादक समिति ने अब 'सेकुलर' का 'पंथनिरपेक्ष' सही अर्थ स्वीकार कर बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य किया है।

इसी कोटि का एक अन्य शब्द है 'वर्णव्यवस्था'। वर्णव्यवस्था वैदिककालीन भारतीय समाज की एक प्रशंसनीय समाज-व्यवस्था थी। जिसमें सभी को यह स्वतन्त्रता थी कि वे चाहे किसी भी कुल में उत्पन्न हुए हों, फिर भी वे अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार चारों वर्णों में से किसी भी वर्ण को ग्रहण कर सकते थे। जैसे आज किसी भी कुल में उत्पन्न बालक अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार अध्यापक, सैनिक, व्यापारी, कर्मचारी, डॉक्टर, वकील, इंजीनियर आदि बन सकता है। वर्ण का अर्थ ही है-वरण करना अर्थात् किसी भी वर्ण को अपनी इच्छा से स्वीकार करना। जन्म पर आधारित जातिवाद वर्णव्यवस्था की धुर विरोधी समाज-व्यवस्था है, क्योंकि उसमें जाति का चयन करने की स्वतन्त्रता नहीं है। जिस माता-पिता के यहाँ बालक का जन्म होता है, बालक की अपरिहार्य रूप से वही जाति मान ली जाती है और कथित व्यवहार में जन्म-जन्मान्तर में वही रहती है। वर्ण एक समूह था, जाति नहीं। पाश्चात्य लेखकों ने वर्ण का अर्थ Class= समूह न करके, Caste= जाति किया और इस तरह वर्णव्यवस्था को जन्म पर आधारित बनाकर उसके स्वरूप को विकृत कर दिया। उस लेखन को पढ़कर अल्पस्वाध्यायी लोगों की सोच भी बदल गई जिससे सुसंस्कृत समाज-व्यवस्था बारे भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गईं और वर्णव्यवस्था का अवमूल्यन हो गया, जो आज भी जारी है। पाश्चात्यों के एक शब्द के अनुवाद ने इतनी बड़ी साज़िश कर डाली कि वैदिक संस्कृति-सभ्यता का असली स्वरूप ही विकृत कर दिया और उसके इतिहास को बदलने में सफल हो गये। आज सत्य वैदिक इतिहासकारों को वर्णव्यवस्था के सत्य स्वरूप को स्थापित करने में जी-जान से प्रयास करने पड़ रहे हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में, पठन-पाठन प्रसंग में एक महत्त्वपूर्ण निर्देश दिया है कि 'वैदिक

भाषा के निघण्टु-निरुक्त आदि शब्दकोशों को पढ़ें, लौकिक संस्कृत भाषा के कोशों को नहीं।' इस निर्देश के मूल में यह सार है कि वैदिक कोशों के पढ़ने से मस्तिष्क में पहले वैदिक अर्थ उपस्थित होता है, जबकि लौकिक कोशों के पढ़ने पर पहले लौकिक अर्थ उपस्थित होता है। इस प्रकार वेद मन्त्रों का अनर्थ हो जाता है। जैसे, वेदों में 'गो' शब्द के पशु से भिन्न किरण, पृथिवी, इन्द्रियाँ आदि अर्थ भी हैं। किन्तु लौकिक संस्कृत के शब्दकोश में 'गो' शब्द पढ़ते ही 'पशु' अर्थ का बोध होता है। उससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इस प्रकार के अनर्थ वाले शब्दार्थों के पाश्चात्य विद्वानों द्वारा कृत कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिनके द्वारा उन्होंने वैदिक अर्थ को अस्वीकार करके वैदिक विचार को विनष्ट किया है।

आश्चर्य का विषय है कि संस्कृत भाषा को न जाननेवाले भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू भी वेद के अर्थकर्त्ता बन गये। उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में कुछ वेदमन्त्रों का अनर्गल अर्थ प्रस्तुत किया है। प्रतीत होता है कि वह अर्थ पाश्चात्य लेखकों का अन्धानुकरण करके किया है, जिसकी पूर्वापर मन्त्रशब्दों से ही संगति नहीं है। कुछ मन्त्रों में एक पद है-'**कस्मै**'। इस शब्द का प्रयोग करने वाला एक मन्त्र है-

हिरण्यगर्भःसमवर्तताग्रे भूतस्य जातःपतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(ऋग्वेद १०/१२१/२/१)

इस मन्त्र का बड़ा सीधा-स्पष्ट अर्थ है- 'जो स्वप्रकाशस्वरूप है, उत्पन्न चराचर जगत् का स्वामी है, उसी परमात्मा ने पृथिवी, सूर्य आदि लोकों को धारण कर रखा है, उस कस्मै=सुखस्वरूप ईश्वर की हम हवि देकर भक्ति किया करें।' यहाँ 'कः' पद सुख का वाचक है (कः सुखः, निरुक्त १०/२२) और 'कस्मै' पद उसका चतुर्थी विभक्ति का एकवचन में प्रयोग है। किन्तु संस्कृत से अनजान लोगों ने उसको प्रश्नवाचक बनाकर अनर्थ कर दिया और मन्त्रार्थ को आपत्तिजनक बना दिया। आपत्ति यह की गई कि वेदों में अनेक देवतावाद है। वेदों को यही पता नहीं है कि हम किस देव की भक्ति करें। इसलिए प्रश्न करके पूछा जा रहा है कि

'कस्मै देवाय हविषा विधेम'

= हम किस देव की हवि से भक्ति करें? वेदों पर यह प्रश्न उठाना सर्वथा गलत है, क्योंकि मन्त्र के पहले तीन चरणों में भक्ति करने योग्य परमात्मा के गुणों का स्पष्ट कथन है। 'कः' शब्द के गलत अर्थ ने मन्त्र के भाव को विकृत कर दिया। यह वेदार्थ को सन्देहास्पद बनाने के लिए की गई शब्दों की साज़िश कही जायेगी!!

इसी प्रकार 'सविता' शब्द है। यह गायत्री मन्त्र में पठित है (**तत् सवितुर्वरेण्यम्**)। गायत्री मन्त्र की वैदिक शास्त्रों और आर्यों/हिन्दुओं के समाज में बहुत अधिक मान्यता एवं प्रतिष्ठा है। इस मन्त्र में 'सविता' का अर्थ सकल जगत् का उत्पादक और दुर्गुणनाशक परमेश्वर है और उससे सद्बुद्धि की याचना की है।

(**सविता सर्वस्य प्रसविता=सविता सब जगत् का उत्पन्नकर्त्ता परमेश्वर है।** निरुक्त १०/३१)

पाश्चात्यों और उनके अन्धानुयायीजनों ने 'सविता' के सही अर्थ 'परमेश्वर' का तिरस्कार करके अप्रासंगिक 'सूर्य' अर्थ कर दिया। इस प्रकार मन्त्रार्थ को विकृत भी किया है और उसकी महिमा को भी विनष्ट किया है। साधारण बुद्धि का भी उपयोग न करते हुए उन लोगों ने यह भी विचार नहीं किया कि जड़ पदार्थ सूर्य दुर्गुण-नाशक और सद्बुद्धिदायक कैसे हो सकता है? जड़ पदार्थ को गुण-दुर्गुण, सद्-असद् बुद्धि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता। जब उसमें ज्ञान ही नहीं है तो उससे प्रार्थना करने का क्या औचित्य बनता है? ऐसा प्रतीत होता है कि गायत्री मन्त्र का सूर्यपरक अर्थ करते हुए अर्थकर्ताओं की बुद्धि भी सूर्य के सदृश जड़ हो गई थी।

ऐसे ही भारतीय संस्कृति-सभ्यता से सम्बन्धित आचार-विचार, यज्ञ आदि विषयक अनेक शब्द हैं जिनका पाश्चात्य लेखकों ने हीन या विकृत अर्थ ग्रहण किया है। स्थानाभाव के कारण कुछ शब्दों को ही उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पाठक पाश्चात्यों और उनके अनुयायियों का लेखन पढ़ते समय सावधानी बरता करें।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

अग्नि सूक्त-०५

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रहा है। गत अंक में मृत्यु सूक्त का अन्तिम व्याख्यान प्रकाशित हुआ। आप सभी ने उक्त सूक्त को उत्सुकतापूर्वक पढ़ा। आप सबकी इस वेद-जिज्ञासा को ध्यान में रखकर शीघ्र ही यह पुस्तक रूप में भी प्रकाशित कर दिया जायेगा। इस अंक (मार्च प्रथम) से ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'अग्निसूक्त' की व्याख्यान माला प्रारम्भ की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर जी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा जी ही कर रही हैं। -सम्पादक

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।

हमारी इस वेदज्ञान की चर्चा में हम ऋग्वेद के पहले सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। और जैसा कि हम जानते हैं कि ऋग्वेद के जो भाग हैं उनको मण्डल कहते हैं, मण्डल के अन्दर सूक्त होते हैं और सूक्त के अन्दर मन्त्र हैं जो इकाई है। इन मन्त्रों का अर्थ करते हुए हम जिन चार बातों को देखते हैं, जिनसे मन्त्र का अर्थ करने-समझने में सहायता मिलती है उन्हें हम ऋषि, देवता, स्वर व छन्द के नाम से जानते हैं। इससे दो बातें सुरक्षित रहती हैं, एक तो इनके उच्चारण का मानदण्ड, उसका औचित्य पता रहता है और दूसरा उस उच्चारण से, उसके स्वर से जो अर्थ आना चाहिये, वह अर्थ सुरक्षित रहता है। इसलिये हमारे ऋषियों ने वेद-मन्त्रों का अर्थ करते हुए उसके ऋषि-देवता-स्वर-छन्द की भी जानकारी आवश्यक मानी है।

हमने पहले देखा था कि ऋग्वेद के पहले सूक्त के जो मन्त्र हैं इनका ऋषि मधुछन्दा है और इसका देवता अग्नि है। छन्द गायत्री है। इस आधार पर हमने इस मन्त्र के अर्थ पर विचार किया। जिस ऋषि ने इसका अवलोकन किया, इसका साक्षात्कार किया, इसके अर्थ को समझा, उसने सबको बताया, आगेवालों को पढ़ाया, उस ऋषि ने जो इसके अन्दर अनुभव किया, जिसे देखा, जिस विषय को पाया उसे देवता के रूप में हमारे सामने रखा, जिसे हम 'अग्नि' कहते हैं। अग्नि देवता, इस ऋग्वेद का ही नहीं, चारों वेदों में सबसे बड़े देवता के रूप में अर्थात् सबसे अधिक मन्त्र अग्निदेव के हैं और ऋग्वेद के दस हजार से अधिक मन्त्रों में ढाई हजार के लगभग मन्त्र अकेले अग्निदेव के हैं। अर्थात् अग्नि कितनी महत्त्वपूर्ण वस्तु है, जिसके लिये वेद के ढाई हजार मन्त्र इसकी व्याख्या में, इसको बताने में लगे हैं। इसी से पता लगता है कि अग्नि कोई सामान्य वस्तु नहीं है। हमने पीछे एक विचार को और भी अच्छी तरह समझा कि जब हम वेद को देखते हैं, वेद का अर्थ जानना चाहते हैं, तो हमें एक बात याद रखनी पड़ती है, क्योंकि वेद सृष्टि का विज्ञान है और सृष्टि के लिये है, इसलिये सृष्टि के अन्दर जो मनुष्य है उसके जानने के लिये है। जो सृष्टि में है वह वेद में है जो आज है और जिसके जानने से, जानने का प्रयोजन पूरा होता है। इस तरह से हम देखें तो एक ही चीज को हम तीन बार देखते हैं, संसार को जिस परमेश्वर ने बनाया, उस बनानेवाले का, बननेवाले, का बनने की प्रक्रिया का ज्ञान करते हैं, क्योंकि उसके बिना उसकी बनाई हुई चीज को जानना ही मुश्किल है। हम जब कोई चीज जानना चाहते हैं तो उसकी जो पृष्ठभूमि है, उसका जो प्राथमिक वस्तु-तत्त्व है उसको अवश्य जानते हैं। उसके जानने से ही हमें आगे की बात का पता लगता है।

एक तो वह है जो इस सृष्टि में हुई है और दूसरी वह है जो सृष्टि में हो रही है। यदि केवल 'हुई है' उसको जानते तो जानने का लाभ क्या था। ऐसा हुआ, ऐसा हुआ यदि हम इतना ही जानते तो उससे हमको

क्या होना चाहिये, इसका क्या पता चलता है? मान लीजिये कि सूर्य की रचना हुई, यह तो ठीक है, लेकिन सूर्य की रचना होकर समाप्त तो हो नहीं गयी, काम रुक तो नहीं गया, काम तो आगे भी चल रहा है। वह सूर्य हुआ, उस सूर्य ने आगे क्या किया, क्या कर रहा है, यह भी तो बताना होगा। तो जो संसार में हुई है वह और जो संसार में हो रही है वह। और जो हो रही है, यदि वह जानी हुई नहीं है तो भी हमारे किसी काम की नहीं। इसलिए वस्तु का इतिहास, वस्तु का वर्तमान दोनों के ज्ञान से हमारे प्रयोजन की सिद्धि होती है। जैसे इस मन्त्र में हमें समझना है अग्नि। तो यह समझना है कि इस संसार के निर्माण में अग्नि का योगदान क्या है, निर्माण में कौन सा तत्त्व है जो अग्नि है? उसके बाद यह जानते हैं कि वर्तमान में अग्नि क्या है, वह अग्नि क्या कर रहा है। यह जानने पर तीसरी प्रक्रिया है कि हम अपना क्या प्रयोजन सिद्ध करेंगे, उससे हम क्या लाभ उठायेंगे। इस सारी प्रक्रिया को जब हम देखेंगे तब हमें वेद का वेदत्व समझ में आएगा। वेद हमें यह बता रहा है कि इस संसार की जो सत्ता है, यह बनी है, तो इसको बनानेवाली और बनने वाली वस्तु जो वर्तमान में चल रही है और उसके चलने का हमें जो लाभ होना है।

यहाँ समझने की एक बड़ी तार्किक बात है जिसे ध्यान में रखें तो समझ में आ जाएगा कि जो सृष्टि में बना है वही क्रियाशील है। जो संसार में क्रियाशील है वही प्राणिजगत् में भी क्रियाशील है। अर्थात् जो प्रक्रिया इस जड़ जगत् में हो रही है, निर्माण की वैसी ही प्रक्रिया हमारे चेतन जगत् में भी हो रही है, क्योंकि यह जगत् जड़ व चेतन का समन्वय है। यदि जगत् जड़ व चेतन का समन्वय नहीं होता, केवल जड़ होता तो ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी। एक दीवार बनी खड़ी है, खड़ी है। जब तक उसको जाननेवाले की इच्छा न हो, जाननेवाले के लिये उसका उपयोग न हो तो उसके होने का कोई अर्थ नहीं होता। इसलिये वेद को जब हम समझना चाहते हैं तो ऐसे समझना चाहिये कि यह संसार चल रहा है, वह कह रहा है कि आपको इसमें चलना है। इन तीनों चीजों को ही एक मन्त्र बता रहा है। हमें लगता है कि आज हो रही बात वेद में क्यों मिल रही है या वेद में 'था-था' ऐसा क्यों लिखा हुआ है और उस 'था' से हमें क्या लाभ है। इन तीनों को जोड़कर आप देखेंगे तो एक-दूसरे से सम्बद्ध पायेंगे। तब इसके प्रयोजन का, इसके लाभ का आपको पता लगेगा। इस दृष्टि से हम विचार करते हैं, मन्त्र है- **अग्निमीळे पुरोहितं, यज्ञस्य देव ऋत्विजं होतारं रत्नधातमम्।** जब हम यह कह रहे हैं कि वह अग्नि जिसकी हम स्तुति कर रहे हैं, वह **पुरोहित** है, **रत्नधातमम्** है, **यज्ञस्य देवम्** है, **होतारम्** है।

यज्ञ हमारे लिये समझने की चीज है। यह सृष्टि यज्ञ है, इस सृष्टि का निर्माण एक यज्ञ है, इस सृष्टि का संचालन एक यज्ञ है, जीवन एक यज्ञ है और इस जीवन को चलाने का जो प्रकार है वह भी एक यज्ञ है। जो लाभ उस यज्ञ के हैं, वे इस यज्ञ के भी हैं। अर्थात् किसी काम को करना, करने का जो तरीका है, करनेवाला है, करने से जो होना है, यह सब का सब किसी भी यज्ञ में है। जो यज्ञ हो चुका उसमें है, जो यज्ञ हो रहा है उसमें है और जो यज्ञ करना है, उसमें है। जो यज्ञ हो चुका, तब भी आप यह बतायेंगे कि इसका यजमान कौन है, इसका पुरोहित कौन है, इस यज्ञ का देवता कौन है और यह बतायेंगे कि इस यज्ञ से क्या लाभ है। वैसे ही वर्तमान में भी आप बतायेंगे कि इस समय सृष्टि में जो यज्ञ चल रहा है वह यज्ञ कौन चला रहा है, उसका यजमान कौन है, उसका पुरोहित कौन है, उसकी अग्नि, उसकी समिधा क्या है, उसका प्रयोजन क्या है। इसको समझने के बाद जब भी हम इस संसार से कुछ चाहेंगे तो हम वही प्रक्रिया अपना लेंगे तो हमें उसी का लाभ मिल जायेगा। जैसे एक पीढ़ी यह देख लेती है कि गेहूँ के बोने से, पानी देने से, खाद देने से, खेती करने से गेहूँ होता है, अगली पीढ़ी भी उसी यज्ञ को कर लेती है। उसी तरह से खेत में जाती है, खेत में हल चलाती है, खेत में बोती है, पानी देती है और यज्ञ को प्राप्त करती है, फल को प्राप्त करती है। इसी तरह जैसे एक यज्ञ को करने से एक

यज्ञ को देखा, दूसरे यज्ञ को किया, तो जैसे पहले से फल की प्राप्ति हुई थी, वैसे दूसरे से होगी। जैसे उस यज्ञ से हम इस यज्ञ को करते हैं, वैसे ही इस संसार में जो कुछ हो रहा है उसको जब एक दृष्टि से देखेंगे, यज्ञ की दृष्टि से देखेंगे तो उस यज्ञ को हम जब करना चाहेंगे तो हम भी उसी तरह का लाभ प्राप्त कर लेंगे, उसी प्रयोजन को सिद्ध कर लेगें। इस मन्त्र में दोनों बातें हैं, यहाँ यज्ञ को जो चेतन है उसकी भी बात की गयी है, यज्ञ का जो जड़ स्वरूप है सांसारिक रूप है उसकी भी बात की गयी है। इसलिये एक ही **अग्नि** शब्द यहाँ चेतन का भी बोधक है, जड़ का भी बोधक है। जैसे चेतन में, जिसका चैतन्य अधिक है, जिसमें अग्नि तत्त्व अधिक है, वह प्रकाशमान है, वह तेजस्वी है। जिसमें अग्नि तत्त्व कम है वह कम प्रकाशवान है। वैसे ही जड़ वस्तु जिसमें ज्यादा प्रकाश है वह अग्नि है, उसमें अग्नि तत्त्व है। जिसमें नहीं है, कोई 'आप:' है, कोई आकाश है।

यदि यह बात हमारी समझ में आए तो मन्त्रों के साथ होनेवाली जो कठिनाई है कि यह मन्त्र कह क्या रहा है, वह हमारे लिये आसान हो जायेगा। कह तीनों चीजों को रहा है। वह संसार के नित्य इतिहास को कह रहा है, संसार के वर्तमान इतिहास को कह रहा है। यह प्रतिदिन हो रहा है इसको नित्य इतिहास कहते हैं। एक यज्ञ थोड़े समय के लिये होता है, एक यज्ञ लम्बे समय के लिये होता है, एक सालों के लिये होता है। वैसे ही यह संसार का यज्ञ, यह जो सृष्टि का निर्माण है, संचालन है, प्रलय है, यह एक यज्ञ है। इसके अन्दर एक छोटा यज्ञ है- बन गया, चल रहा है, उससे भी छोटा यज्ञ है- इसमें बहुत सारी चीजें बन रही हैं, नष्ट हो रही हैं। उससे भी छोटा यज्ञ है- एक दिन होता है वह समाप्त होता है, अगला दिन शुरू हो जाता है। उसमें भी बहुत छोटे हैं जो-जो क्षण हैं आ रहे हैं, जा रहे हैं।

इसलिये यज्ञ बड़ी प्रक्रिया से लेकर के छोटी प्रक्रिया तक है और हर जगह प्रारम्भ है और पूर्णता है। जैसे एक दिन है, इसका प्रारम्भ है और पूर्णता है, यह इसकी छोटी इकाई है। एक २४ घण्टे का यज्ञ है। यह यज्ञ जब बड़ी इकाई में ले लेते हैं- पक्ष में, मास में, अयन में, संवत्सर में, तब इकाई बड़ी हो जाती है लेकिन फिर दोबारा आ जाती है। उससे बड़ी इकाई ले लेते हैं, उससे भी बड़ी ले लेते हैं। वैसे ही हम कौन सा यज्ञ कर रहे हैं, दिन का कर रहे हैं, मास का कर रहे हैं, जीवन का कर रहे हैं, कई जीवनों का कर रहे हैं। हम प्रकृति के कौन से विज्ञान का, कौन सी वस्तु के लिये कर रहे हैं।

एक जो तत्त्व है वह अलग-अलग स्थानों पर व्याप्त हमें दिखाई देता है। यदि यह बात हमारी समझ में आ जाए तो हमारे लिए यज्ञ समझना बहुत आसान हो जाएगा और यज्ञ यदि समझ में आ गया तो ऋग्वेद का जो पहला मन्त्र है वह समझना बहुत आसान हो जाएगा, क्योंकि इसमें यज्ञ है जड़ का, इसमें यज्ञ है चेतन का और वह जड़-चेतन क्योंकि यज्ञ है तो यज्ञ की प्रक्रिया में दोनों जगह शब्द समान है, इसलिये इस मन्त्र में समान शब्दों की चर्चा है।

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

कुछ तड़प–कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

महात्मा नन्दगोपाल जी एक विस्मृत बलिदानी– गत दिनों दो सज्जनों ने आग्रहपूर्वक मुझसे ऋषि-जीवन विषयक कुछ सामग्री माँगी। मैंने उन्हें कहा एक संक्षिप्त प्रश्न का उत्तर तो चलभाष पर दिया जा सकता है, लम्बी चर्चा मिलकर की जा सकती है। एक भाई ने माँग की कि आपके पास जो अलभ्य स्रोत हैं उनकी मुझे फोटो करवा के भेज दें। उसे पूछा कि क्या सम्पूर्ण जीवन-चरित्र, नवयुग की आहट, इतिहास की साक्षी आदि पुस्तकें देखी हैं? उसे पता ही नहीं था कि ये कब छपीं? कहाँ से छपीं? इत्यादि।

इससे मैं समझ गया कि इस जीवनी-लेखक का अध्ययन कैसा है। दुर्लभ स्रोतों के संग्रह से कोई किसी विषय का अधिकारी विद्वान् नहीं बनता। सामग्री का उपयोग प्रयोग करने की सूझ भी तो चाहिये। अन्यथा हानि होगी।

श्री प्रिंसिपल अभय आर्य जी ने **महात्मा नन्दगोपाल** जी विषयक कुछ जानकारी माँगी। मैंने कहा, आप पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने उस बलिदानी की चर्चा छेड़ी है। मैंने कहा, भाई परमानन्द जी आदि के आधार पर दो-चार दिन में प्रामाणिक जानकारी दूँगा। आर्यसमाज का स्वतन्त्रता-संग्राम में योगदान पर लेख लिखनेवालों की भरमार रहती है। नन्दगोपाल जी का कभी किसी ने नाम तक नहीं लिखा। **वह पहले बलिदानी वीर थे जिन्होंने दूसरे पीड़ित क्रान्तिकारियों के लिये कालेपानी में लम्बी भूख हड़ताल की।** भाई परमानन्द जी ने उन्हें महात्मा नन्दगोपाल लिखा है। वीर सावरकर की लौह लेखनी ने भी उसे जीवित रखा। मुंशी केवल कृष्ण, श्रद्धेय लक्ष्मण आर्योपदेशक, स्वामी सोमदेव और महाशय कृष्ण जी को जन्म देनेवाले क्षेत्र में उत्पन्न इस आर्यवीर को विस्मृति के गढ़े से निकालकर अब श्री अभय का तथा मेरा प्रयास शीघ्र समाज को लाभान्वित करेगा।

आर्यसमाज ने अपने इतिहास के मूल स्रोतों की सुरक्षा के लिये कुछ किया होता तो उपहासकारों ने मनगढ़न्त और मुँहजबानी इतिहास लिख-लिखकर गप्पें न परोसी होतीं।

माता रामरखी तथा भाई बालमुकन्द– एक हिन्दी अध्यापक ने क्रान्तिकारियों पर एक पुस्तक बनाकर छपवा दी। उसमें शहीद भाई बालमुकन्द और उनकी पत्नी माता रामरखी का इकट्ठा दाहकर्म करयाला ग्राम में करवा दिया। मैंने इस गप्प का प्रतिवाद सप्रमाण किया। तब क्रान्तिकारियों के शव उनके परिवारों को सरकार देती ही नहीं थी। **मेरे तर्कों, प्रमाणों व तथ्यों की पुष्टि में आर्यसमाज में कोई आगे नहीं आया।**

भाई परमानन्द जी ने बहुत समय पहले दोनों के दाहकर्म पर प्रामाणिक जानकारी देते हुये देश के बलिदानियों पर छपा महात्मा आनन्द स्वामी का एक लेख (सर्वश्रेष्ठ छपे लेख-संग्रह से) कभी छपवाया था।

श्री लक्ष्मण आर्य का साहसिक उदाहरण– श्री लक्ष्मण आर्य जी की माता के निधन पर जब उनका एक भाई शोक-दिवस पर पुराण की कथा करने का हठ कर बैठा तो लक्ष्मण जी उस शोकसभा में सम्मिलित ही न हुए। ऐसा करके गुणी साहसी आर्यवीर लक्ष्मण जी जिज्ञासु ने अतीत को वर्तमान कर दिखलाया। कभी श्यामभाई और वंशीभाई सगी बहिन के विवाह में इसी कारण सम्मिलित न हुए। श्री महाशय कृष्ण जी ने बहुत दबाव पड़ने पर भी अपने पिता के दाहकर्म पर पौराणिक क्रियाएँ करने से इनकार कर दिया। वह अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। उनकी माता भी दबाव में न आईं। महाशय कृष्ण अपने पिता के इकलौते पुत्र थे, अड़ गये और इतिहास रचकर दिखा दिया। उस इतिहास को श्री लक्ष्मण जी जिज्ञासु ने दोहरा कर समाज का सिर ऊँचा कर दिया।

होली पर हिन्दुओं की भीड़– सरकार की, वैज्ञानिकों की और डॉक्टरों की एक न सुनकर देशभर

में हिन्दुओं ने होली पर भीड़-भाड़ करके अपने अन्धविश्वास, अपनी अन्धपरम्परा और विवेकहीनता का खुला प्रदर्शन किया। इसे वे आस्था मानते हैं। देश और जाति को सन्मार्ग-दर्शन कैसे होगा? अयोध्या, मथुरा, काशी और हरिद्वार के साधु, मठाधीश, पण्डित आचार्य यह तमाशा देखकर मौन साधे रहे।

धर्म-प्रचार, समाज-सुधार से हिन्दू को चिढ़ है। कुम्भ स्नान में डुबकी लगाने को 'आस्था की डुबकी' बताकर महिमामण्डित किया जाता है। कुम्भ पर न कोई सन्देश, न उपदेश, न धर्म-चर्चा, न यज्ञ-हवन, न आत्मचिन्तन, न व्यवस्था से उठना, न बैठना। समाज-सेवा, कुरीति-निवारण, समरसता लाने के लिये न तो कुछ चिन्तन और न मनन। यह प्रवृत्ति आत्मघाती है।

मुझे सुनकर धक्का लगा- हमारे पिताजी ग्राम के पहले आर्यसमाजी थे। कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष और शुद्धि -प्रचार, अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन छेड़ने पर उनका प्रचण्ड बहिष्कार किया गया। आर्यसमाज के इतिहास में तब उन्होंने और उनके एक भी साथी ने क्षमा न माँगी। हमारे परिवार में हम लोगों ने कभी होली मनाने के नाम पर मट्टी, धूलि, रंग किसी पर नहीं फेंका। इस बार कहीं से मुझे सूचना जैसे-कैसे पहुँचाई गई कि आपके भाई प्रिंसिपल यशपाल जी के परिवार में कुछ दुर्घटना घटी है। मैं यह सुनकर धक्क रह गया।

जाँच पड़ताल करने पर पता चला कि उनका ज्येष्ठ पुत्र रवि और उसकी पत्नी होली मनाने के लिये मित्रों के संग कहीं गये थे। सिरसा में एक ट्रक उनकी कार पर पलट कर गिरा। इस दुर्घटना में रवि की मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी अभी अस्पताल में है। कार में बैठे उनके साथी तो बच गये।

वर्तमान में मेरे भाई श्री यश आर्यसमाज में सबसे अधिक बार देश-धर्म के लिये जेल गये हैं। ९३-९४ वर्ष की आयु में उनको यह असह्य धक्का लगा है। वह प्रात:काल स्नान आदि करके आर्यसमाज मन्दिर में जाकर बैठ जाते। दिनभर आर्यसमाज में... यही उनकी दिनचर्या। यही उनके लिये आनन्द-रस। जीवन की साँझ में परिवार में पहली बार होली मनाने उनका सुशिक्षित पुत्र निकला तो यह घटना एक दु:खद स्मृति बन गई। होली के हुड़दंग, दंगे, झगड़े और मृत्यु के समाचार हम सदा पढ़ते आये हैं। प्रभु इन्हें ज्ञान कब होगा? ये क्या कभी सुधरेंगे?

यह पराजित मनोवृत्ति- एक के पश्चात् दूसरे प्रदेश में लव जिहाद की दुहाई देकर नये-नये कानून बन रहे हैं। इससे यही प्रमाणित होता है कि हिन्दू युवतियाँ सुरक्षित नहीं। उनके धर्मच्युत होने की आज बहुत सम्भावना रहती है। यह अवश्य चिन्ता का विषय है। यह समस्या केवल हिन्दुओं के सामने है। इसका कारण क्या है? इसका कारण मात्र यह है कि हिन्दू घण्टा-घड़ियाल बजाकर, मूर्ति को माथा टेककर स्वयं को भक्त मान लेता है। धर्म, कर्म, उपासना के विषय में चिन्तन, मनन, श्रवण करना उसके स्वभाव में ही नहीं। विधर्मी अपने धर्मग्रन्थों का पाठ करते हैं। सुनते हैं और सुनाते हैं। धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों पर हिन्दुओं में कहाँ चर्चा होती है। असंख्य भगवानों में से कौन बड़ा? कौन छोटा? किसकी क्या विशेषता? इस पर कहाँ विचार होता है? राम-मन्दिर के निर्माण पर अपार धन-संग्रह हो रहा है?

यह किसलिये? केवल मन्दिर-निर्माण के लिये। **जाति व समाज के निर्माण के लिये कतई कोई योजना नहीं।** गैंगरेप के महारोग के विरुद्ध समाज को जागरूक करने, बेटियों को बचाने के लिये कोई आन्दोलन खड़ा किया जाता, पद यात्रायें निकाली जातीं, साधु ग्राम-ग्राम जातिवाद मिटाने, समरसता लाने, यात्रायें निकालते तो नवयुग लाया जा सकता था। कुछ बड़े-बड़े नगरों, अयोध्या, हरिद्वार, काशी आदि में महात्मा, आचार्य सारा वर्ष पड़े रहते हैं। जाति का बेड़ा पार कैसे हो?

लाला लाजपतराय ने लिखा है- सम्भव है कुछ सज्जन यह जानते हों कि लाला लाजपतराय जी ने अपनी एक पुस्तक अपने आरम्भिक काल में कर्नल प्रतापसिंह जोधपुरवाले को समर्पित की थी, परन्तु लालाजी के देश से निष्कासन के पश्चात् लालाजी के

किसी भी लेख में प्रतापसिंह के नाम का उल्लेख नहीं मिलेगा। मैंने अभी-अभी लाला जी के कई चुने हुये लेखों व भाषणों का अनुवाद व सम्पादन किया है। इनमें जोधपुर व प्रतापसिंह दोनों की ही चर्चा नहीं। इसी संग्रह में लालाजी ने घुड़दौड़ को जुआ मानकर इस बुराई की निन्दा की है।

मैं यह लिखता रहा कि ऋषि दयानन्द को जब विष दिया गया तो उनको छोड़कर प्रतापसिंह पूना में **घुड़दौड़ का जुआ खेलने के लिये चला गया।** उसके पास ऋषि का पता करने व सेवा करने का समय नहीं था। मेरे ऐसे लेख के लिये मुझे क्रूरता से कोसते हुये लिखा गया कि जिज्ञासु को इतना भी पता नहीं कि प्रतापसिंह घुड़दौड़ में भाग लेने गया था। यह कोई जुआ नहीं। अब मान्य डॉ. ज्वलन्त जी भी वही कुछ लिख रहे व कह रहे हैं जो मैंने अपनी पुस्तकों में लिखा है, परन्तु आर्यसमाज में तब प्रभावशाली महानुभावों ने मेरे विरुद्ध लिखे गये उस लेख पर कोई प्रतिक्रिया न दी। मैंने आप ही उस लेख की शव-परीक्षा कर दी। न जाने आर्यसमाज में इतनी ढील, इतनी चेतना, शून्यता कैसे आ गई?

अब तो लाला लाजपतराय जी के लेख को प्रचारित करना चाहिये। लालाजी को देश से निष्कासित करके माण्डले में बन्दी बनाया गया। लाला जी ने खुलकर एक से अधिक बार यह लिखा व कहा कि महात्मा मुंशीराम खुलकर, डटकर और निडरतापूर्वक मेरे बचाव के लिये संघर्ष करते रहे। सप्रमाण मैं यह लिखता रहा। इस तथ्य को लाला जी पर लिखनेवालों ने कभी छुआ तक नहीं। इसका कारण क्या है? फिर हमारा ऐसा गौरवपूर्ण इतिहास कैसे सुरक्षित होगा?

जब लालाजी देश से निष्कासित किये गये तब वह ऐसे पहले देशसेवक नेता थे जिन्हें यह दण्ड दिया गया। इसके कुछ समय पश्चात् आर्यसमाज के दमन, दलन की सरकारी नीति जो लम्बे समय तक चली, उसमें पटियाला में राजद्रोह के अभियोग में आर्यलोगों को सताया, डराया और दबाया जाता रहा। यह चक्र धौलपुर के आर्य-सत्याग्रह तक चलता रहा। प्रश्न यह उठता है कि ऐसे किसी भी काण्ड और घटना के समय प्रतापसिंह क्यों नहीं बोला? राजस्थान में लालाजी के लिये, पटियाला स्टेट के आर्यों के लिये न सही धौलपुर सत्याग्रह पर भी प्रतापसिंह तो क्या सारे राजस्थान में किसी ने डटकर कुछ लिखा हो तो उस पर कोई माननीय महानुभाव कुछ प्रकाश डालेंगे तो यह बहुत बड़ी सेवा मानी जावेगी अन्यथा शूर शिरोमणि महाराणा प्रताप की धरती के आर्यों के लिये इतिहास में क्या लिखा जावेगा?

स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा आर्यवीर सत्याग्रहियों पर तब पाँच बार ईंट पत्थर धूलि वर्षा की गई। महाराज श्रद्धानन्द लहुलुहान हुए। इस घटना पर उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर के आर्यसमाज में आर्यों ने इस कुकृत्य की निन्दा की, परन्तु 'आर्य समाचार' की प्रतिक्रिया को आधार बनाकर भी राजस्थान में किसी ने इस निन्दनीय कर्म पर दो शब्द न लिखे। इतना भयभीत होने का कोई कारण तो कोई बतावे। अब तक प्रतापसिंह की स्तुति में जो कुछ लिखा गया और जो उसका स्तुतिगान करते रहे, उन सब पर नये सिरे से विचार करके राजस्थानवालों को कुछ लिखना पड़ेगा। इतिहास कलङ्कित होने से बचाना चाहिये।

ऋषि जीवन से खिलवाड़ न होने दो- आर्यविद्वान् यह जानते ही हैं कि महर्षि के जोधपुर के लिये प्रस्थान करने से लेकर अजमेर पहुँचने पर प्राण देने तक की घटनाओं का वर्णन देवेन्द्र बाबू, घासीराम जी, लाला लाजपतराय, मेहता राधाकिशन, श्री लक्ष्मण आर्योपदेशक सबने पं. लेखराम जी के आधार पर ही लिखा है। पं. लेखराम जी ने अपनी जानकारी का स्रोत 'आर्य समाचार' मेरठ के उस समय के ऐतिहासिक लेख को बताया है। अन्य-अन्य लेखकों में से पुराने जीवनी-लेखकों ने पं. लेखराम जी का नाम तो लिया है, 'आर्य समाचार' के अंक का उल्लेख किसी ने नहीं किया।

'आर्य समाचार' को जोधपुर, आबू पर्वत और अजमेर तक की सब घटनाओं की जानकारी कहाँ से मिली? यह प्रश्न किसी के सामने कभी आया ही

नहीं। इसके साथ ही यह प्रश्न खड़ा होता है कि 'आर्य समाचार' का वह ऐतिहासिक लेख पं. लेखराम जी के पश्चात् आर्यसमाज के किस-किस लेखक, विद्वान् व जीवनी लेखक ने देखने का गौरव प्राप्त किया? इसका कहीं कोई उल्लेख हो तो मुझे भी बताने की कोई कृपा करें।

यह लेख- यह अङ्क आर्यसमाज ने क्या कहीं भी सुरक्षित किया है? जिन लोगों के सामने पं. लेखराम जी को फ़ारसी का मामूली ज्ञान रखनेवाला घोषित करके उनके ग्रन्थ का उपहास उड़ा दिया गया उन लोगों ने उस अङ्क के लिये दो-चार बार मेरठ की यात्रा तक नहीं की तो उस मूल्यवान् स्रोत की रक्षा कैसे होती? आर्यपुरुषो! परन्तु किसी को यह सोचना न चाहिये कि पं. लेखराम मर गया है।

फ़ारसी में एक पद्य है-

दर बेशा गुमाँ मुवर के ख़ालीस्त
शायद के पलंग ख़ुफ़तः बाशद

अर्थात् जंगल में निकले हो तो यह मत सोचो कि जंगल ख़ाली है। यह सोच-समझकर निकलो कि सम्भवतः सिंह वन में कहीं सोया पड़ा हो।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के इस मानसपुत्र ने दिन-रात एक करके देशभर में घूमकर वह अङ्क किसी ऋषिभक्त की कृपा से प्राप्त करके सुरक्षित कर दिया और श्रीमान् डॉ. धर्मवीर के उर की आग को देखकर उस लेख की फ़ोटोप्रति परोपकारिणी सभा को भी भेंट कर दी।

प्रतापसिंह से कोई बात हुई ही नहीं- ऋषि-जीवन में यह मनगढ़न्त दो कहानियाँ जोड़ी गईं कि ऋषि दयानन्द की उपस्थिति में जोधपुर में आर्यसमाज की स्थापना हुई। मैंने महर्षि के बलिदान के समय देश भर में स्थापित आर्यसमाजों की दो-तीन प्रामाणिक सूचियाँ सन् १९८३ में पहली बार खोजकर छपवा दीं। ऋषि का पत्रव्यवहार भी छपता चला आ रहा है। जोधपुर में उस समय समाज की स्थापना का झूठ गढ़नेवाले झूठ गढ़-गढ़कर धन्य हो गये। जोधपुर समाज की स्थापना का समाचार भी पूरा-पूरा अपने पास है।

एक कहानी यह गढ़कर ऋषि-जीवन में विष घोला गया कि प्रतापसिंह ने आबू पर्वत पर ऋषि से कहा कि यदि आपको डॉ. अलीमर्दान पर विष देने का सन्देह है तो मुझे बतावें। ऋषि दयानन्द ने उसका नाम नहीं लिया। महाराजा प्रतापसिंह तो दण्ड देने को तैयार था।

मित्रो! प्रतापसिंह जब जोधपुर पहुँचा तो ऋषि का पता तो वहाँ सेवा करनेवालों से पूछा, परन्तु ऋषि से कोई संवाद नहीं हुआ। पं. भगवद्दत्त जी, मीमांसक जी, हरविलास जी सारडा सब मानते हैं ऋषि तब बोलने में अशक्त थे। 'आर्य समाचार' में प्रतापसिंह के संवाद की कल्पित कहानी का कतई कोई उल्लेख नहीं। यही कहानी स्वामी सत्यप्रकाश जी को पढ़ाई-सुनाई गई।

स्वामी जी ने श्री ठाकुर अमरसिंह जी और श्रीयुत ओमप्रकाश जी वर्मा के सामने मुझसे इस सम्बन्ध में प्रश्न किया। मैंने तत्काल जो उत्तर दिया उस पर ठाकुर अमरसिंह और वर्मा जी वाह! वाह!! कह उठे और पूज्य स्वामी सत्यप्रकाश जी ने अपना बड़प्पन दिखाकर मुझे आशीर्वाद दिया। उनका उस गप्प से पिण्ड छूट गया। जो उस गप्प के प्रसार करने में भागीदार बने उन्होंने तो पाप के लिये आर्यजनता से क्षमा नहीं माँगी? मुझे वे क्यों धन्यवाद देते?

मेरे साहित्य के ऐसे-ऐसे पापी- श्री स्वामी सम्पूर्णानन्द जी करनाल ने चलभाष पर संवाद करते हुये एक गुणी लेखक की एक पुस्तक की चर्चा छेड़कर बताया कि उसे भले विद्वान् सज्जन ने एक पुस्तक में लिखा है कि वीर भगतसिंह जब कॉलेज में पढ़ता था तो श्री पं. त्रिलोकचन्द जी शास्त्री से अपने यज्ञोपवीत संस्कार करवाने की प्रार्थना की। आगे बहुत लम्बी कहानी बना ली। लेखक लगनशील, विद्वान् और भद्रपुरुष है। जिस विषय का ज्ञान नहीं उसके अधिकारी लेखक बनने की कुचेष्टा उसके लिये अपयश का कारण ही बनेगी।

स्वामी जी ने मुझे कुछ लेखों की चर्चा करते हुये बताया कि वह अपनी जानकारी का स्रोत तो बताते नहीं बस आप को थोड़ा पढ़कर मिर्च मसाला लगाकर

इतिहासकार बन जाते हैं। मैं इस रोग का क्या उपचार करूँ? आर्यसमाज के सात खण्डों के इतिहास में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी पर सारी सामग्री मेरे ग्रन्थ से लेकर उसमें जी भरकर मिलावट हटावट करके परोस दी। मेरे ग्रन्थ का पूरा-पूरा प्रमाण उद्धृत करता तो सम्भवत: मेरा नाम देना पड़ता। इससे वह छोटा बन जाता। स्वामी जी कभी सरस्वती नहीं लिखा करते थे। न मैंने उनके नाम के साथ कभी सरस्वती लिखा। लौहपुरुष का मुखपृष्ठ बनाकर पहली बार मुझे दिखाया न गया। उसमें भूल से किसी ने सरस्वती शब्द जोड़ दिया।

एक सज्जन मेरी नई पुस्तक छपते ही झट से पत्र लिखकर पुस्तक माँग लेता था। पढ़कर अपना जो लाभ लेना होता ले लेता, परन्तु उसने कभी किसी लेख में, पुस्तक में मेरे साहित्य के लिये कृतज्ञता के दो शब्द न लिखे। मुझे पत्र लिखकर भले ही... प्रत्येक विषय पर तो किसी का अधिकार हो नहीं सकता। ऋषि का अनूठा ऐसा कथन हमारा आदर्श होना चाहिये, फिर भी आर्यसमाज के कई विद्वानों की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक का निर्णायक, उनके साहित्य के आर-पार गये बिना और पढ़े बिना ही जब एक ज्ञानी बन बैठा तो उसके प्रमाणपत्रों से ही उसकी अज्ञता और धृष्टता की पोल खुल गई। अपनी सीमा में ही रहना ठीक है।

इतनी जड़ता! इतना अज्ञान!!- इन दिनों आर्यसमाज तथा नारी-शिक्षा, नारी-सम्मान आदि कई विषयों पर लिखे लेख मेरी दृष्टि में आये। कुछ उच्चपठित लेखकों ने मुझसे जानकारी लेने हेतु सम्पर्क भी किया। लेख लिखनेवालों को लिखने का चाव और निम्नस्तर के पत्रों में आचार्य बनकर कुछ भी लिख दो। न लेखक श्रम करते हैं और न पत्रों के सञ्चालकों के पास पढ़ने-लिखने का समय है।

किसी भी ऐसे लेख में किसी संस्था की पूरे विश्व में सर्वसम्मति से प्रधान चुनी गई माता लाडकुँवर पत्नी राव युधिष्ठिर सिंह का नाम पढ़ने को न मिला। आर्यसमाज का गौरव व प्रतिष्ठा जब आर्यसमाजी लेखकों में ही नहीं तो और कोई क्या मान देंगे?

माता भगवती ऐसी पहली महिला थी जिसे शिक्षा-प्रसार आन्दोलन में डी.ए.वी. की स्थापना के समय लाहौर की उस ऐतिहासिक सभा में व्याख्यान देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह भारत में जनजागरण के इतिहास की ऐसी पहली घटना थी। बताने पर, सुझाने पर भी इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया जाता। इसका कारण अज्ञान व अहंकार तथा प्रमाद ही हो सकते हैं।

पं. सुदर्शन जी विश्वप्रसिद्ध कहानीकार, पत्रकार, जीवनी-लेखक व हिन्दी कवि थे। मुझसे प्रतिष्ठित मुस्लिम उदार-हृदय साहित्यकारों ने सुदर्शन जी का उर्दू साहित्य तथा और जानकारी माँगी। करोना बाधक न होता तो वे मेरे पास पहुँच भी जाते। आर्यसमाजी आचार्यों, डॉक्टरों ने मेरे बताने पर भी कभी उनकी पत्नी का नाम हिन्दी साहित्य सेवा के लिये नहीं लिया। मैंने स्पष्ट लिखा है सुदर्शन जी की हिन्दी-सेवा का श्रेय उनकी आर्यसमाजी पत्नी को भी तो प्राप्त है। वह बटाला (पंजाब) में जन्मी थीं।

आगामी योग शिविर

२० जून से २७ जून २०२१

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है। (सत्यार्थ प्रकाश सम्मुलास ३)

ऐतिहासिक कलम से....

मनु की देन

स्व. पं. भगवद्दत्त (वैदिक इतिहासकार)

टिप्पणी- आज के बच्चे बिना यह जाने कि आखिर सत्य क्या है, मनु को गाली देना ही अपने प्रबुद्ध होने का प्रमाण समझते हैं। सारे संसार को कानून का पाठ पढ़ाने वाले महाराज मनु आज अपनी ही सन्तति के द्वारा हेय समझे जाते हैं। क्या यह समझ उचित है? नहीं और कदापि नहीं। कुछ धूर्तों की धूर्तता के कारण महर्षि मनु की शिक्षाओं का अनादर करना न केवल अनुचित ही है बल्कि हानिकारक भी है और इसी का परिणाम है कि आज दुनिया भर के संविधानों की नकल करके हम स्वयं को संवैधानिक समझते हैं।

इस लेख में आर्यजगत् के महान् इतिहासकार पं. भगवद्दत्त 'रिसर्चस्कॉलर' ने महाराज मनु का महत्त्व समझाया है। 'परोपकारी' पाठकों की सेवा में यह लेख प्रस्तुत करता है। सम्पादक

१. वेद का महत्त्व- अपने असाधारण और अति व्यापक ज्ञान के कारण, अपनी सूक्ष्मेक्षिका से, अपनी सात्विक और निर्मला प्रज्ञा से, अपने उस असीम योगबल से, जिसके आधार पर वह भूत, भव्य और भविष्य को जान गया, मनु ने वेद के अलौकिक ज्ञान-विज्ञान का गीत गाया। मनु का उपदेश है

(क) वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। (२/६)

अर्थात्- वेद सम्पूर्ण धर्म (कानून Law) का मूल है। धर्म, राज्य का एक प्रधान अंग है। धर्म से ही दण्ड चलता है।[१]

धर्म से आचार- मर्यादा स्थिर होती है। धर्म से स्वामी-सेवक, गुरु-शिष्य, सेनापति-सेना, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, व्यापारी-व्यापार बँधे हुए हैं। धर्मविहीन राजा-प्रजा गहरे गर्त में गिर जाते हैं।

इस सम्पूर्ण धर्म का मूल वेद है। परन्तु, गत १५०० वर्ष में भारतीय लोग इस सत्य को भूल गये। इस काल में एक विश्वरूप आचार्य (संवत् ६०० के समीप) हुआ है, जिसने बालक्रीड़ा-व्याख्या में याज्ञवल्क्य के श्लोकों की पुष्टि वेदमन्त्रों और ब्राह्मण-पाठों से की है। अन्य टीकाकारों का इधर ध्यान भी नहीं गया।

वेद का यथार्थ विद्वान्- भारतीय संस्कृति में वही पुरुष वेद का पण्डित अथवा वैदिक विद्वान् माना जायेगा, जो वेद की श्रुतियों से सम्पूर्ण धर्मशास्त्र का आगम बता सके। दण्ड-विधान की सूक्ष्मताएँ वेद-मन्त्रों से दिखानी आवश्यक होंगी।

समाज-शास्त्र का आधार वेद- मनुष्य समाज में रहता है। समाज का ढाँचा वेद से चला है। तभी समाजशास्त्र की आवश्यकता पड़ी। उसकी रक्षा दण्ड-विधान से हुई। अत: उस शास्त्र का आधार वेद है।

(ख) वेद और वेद का प्रतिपादक मनु दोनों सर्वज्ञानमय।

मनु कहता है-

य: कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तित:।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि स:।। २।।

अर्थात् जो कुछ किसी का भी धर्म मनु ने कहा, वह सब वेद में कहा गया है। वेद सर्वज्ञानमय है। (अथवा मनु भी सर्वज्ञानमय है।)

मनु-विषयक यह दूसरा अर्थ श्लेष से आकृष्ट होता है। गोविन्दराज ने पहला अर्थ ही ठीक माना है।

सर्वज्ञानमूलक वेद- मनु के श्लोक से पहले कह चुके हैं कि वेद अखिल धर्म का मूल है। अब उससे भी अधिक कथन है- वेद सर्वज्ञानमय है। वेद का अध्यापक, वेदपारग सर्वज्ञानमय होता है।

वर्तमानकाल के भारतीय विश्वविद्यालयों के नाममात्र महोपाध्याय जो वेद पढ़ा रहे हैं, वे इस गुण के समीप फटक भी नहीं रहे हैं। वस्तुत: वे वेद नहीं जानते। उनको वेदाध्यापक बनाना भारतीय संस्कृति के साथ उपहास करना है।

आर्यसमाज का तीसरा नियम- दूरदर्शी, महामुनि पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज का तीसरा

नियम बनाया– वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इस नियम का मूल मनुस्मृति का यही श्लोक है। इस नियम के शेष भाग का मूल मनु. ४। १४७।। है। स्वामी दयानन्द सरस्वती मनु के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपने उपदेश का आधार उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र और गीता को नहीं बनाया। शंकर, रामानुज और वल्लभ आदि पुरातन आचार्यों से वे अधिक दीर्घदर्शी थे। उनका मार्ग प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय का मार्ग था। वे राजनीति को भी मानव-कल्याण का सोपान मानते थे। अत: वेद से उतर के उन्होंने मनुस्मृति को अपने उपदेश का अंग बनाया और मनुस्मृति के सतत अभ्यास से वेद के सर्वज्ञानमय होने का तथ्य उनके हृदय पर अमिट रूप से अंकित हो गया।

वेद में त्रिकालज्ञान- मनु के लिए वेद की महत्ता अन्य कारण से भी है। वेद में त्रिकाल का ज्ञान है। मनु कहता है-

भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।(१२/९७)

अर्थात्– भूत=सारी, सृष्टि=उत्पत्ति, वर्तमान और जो कुछ आगे होगा, यथा प्रलय और उसके पश्चात् भी, वह सब वेद में वर्णित है।

यह विज्ञान की चरम सीमा है, बुद्धि के ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है और योगज-प्रत्यक्ष-दर्शन की अपरिमित महिमा है।

वेद-निन्दक नास्तिक- इस महत्त्व-परिपूर्ण, शुभ्रज्ञान की जो निन्दा करता है, वही नास्तिक है। मनु कहता है-

नास्तिको वेदनिन्दकः। (२/११)

अत: आगे बतायेंगे कि नास्तिक-आक्रान्त देश किस प्रकार विनाश को प्राप्त होते हैं।

वेद-पुण्य- इसलिए मनु ने वेदफल १/१०९।।, वेदपुण्य से युक्त होना-२/७८, वेदाभ्यास परमतप-२/१६६।।, वेदचक्षु- १२/९४।। से वेद की महिमा गाई है।

भारतवर्ष के कल्याण के लिये तथा इसकी पूर्व-प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिये वेदज्ञान के उपार्जन और प्रसार का अभूतपूर्व आन्दोलन होना चाहिये। अंग, उपांग और ब्राह्मण ग्रन्थों के शतश: जाननेवाले, सदाचार की सुदृढ़ नींव पर खड़े होकर यह कठिन काम कर सकेंगे।

२. वर्णाश्रम की श्रेष्ठ मर्यादाएँ- मनु की दूसरी देन वर्णाश्रम- मर्यादा की स्थापना है। इस मर्यादा से रहित संसार आज दु:ख-क्रन्दन कर रहा है। लोभ से अतिपीड़ित हो रहा है।

मनु का ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ- ब्राह्मण धन-बल से ऊँचा नहीं है, ब्राह्मण बाहु-बल से भी ऊँचा नहीं है। वह ऊँचा है अपने अप्रतिम ज्ञान-बल से। उसका विशिष्ट-ज्ञान वेद पर आश्रित है । उसकी बड़ाई ज्ञान से ही है-

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम्। (२/१५५)

ब्राह्मण आविष्कारक- सृष्टि के सुख के लिये परमोच्च ब्राह्मण भगवान् ब्रह्मा ने सम्पूर्ण शास्त्रों का शासन किया। उशना=शुक्र और बृहस्पति ने अनेक विद्याएँ रचीं। उशना ही मृतकों को जीवित करने में सशक्त हुआ। ब्राह्मण विश्वकर्मा ने अपूर्व शिल्प आविष्कृत किये। भरद्वाज ने आकाशगंगा तक उड़नेवाले विमान बनाये। ब्राह्मण-प्रवर व्यास ही दिव्य चक्षु=विद्युत आँखें दे सका।

आर्य जाति में राजा, प्रधानमन्त्री, अथवा गणनायक इतना पूज्य नहीं, जितना यथार्थ ब्राह्मण पूज्य है। ब्राह्मणों और ऋषियों से अपनी कन्याओं का विवाह करके आर्य राजगण अपना गौरव मानते थे। वेदज्ञ ब्राह्मण ही यथार्थ नेता होता है।

सर्वतः श्रेष्ठ, ब्राह्मण- भारतीय संस्कृति में सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण वही है, जो केवल अगले दिन की भोजन-सामग्री एकत्र रखता है। उससे न्यून श्रेष्ठ एक से छह मास की सामग्रीवाला है। श्रेष्ठता का यही माप उत्तरोत्तर होता है। मनु. ४/२-७।। ब्राह्मण लोलुप नहीं था। लोभ से धन स्वीकार करनेवाला ब्राह्मण विनाश को प्राप्त होता है, ३/१७९।। ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि वह स्वाध्याय में रत रहे। स्वाध्याय-विरोधी अर्थोपार्जन के सम्पूर्ण व्यवहार उसे त्यागने चाहिए-

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः (४/१७)

ब्राह्मण पर राष्ट्र का आधार- श्रेष्ठ राष्ट्र का आधार इन अतिमानुष (Superman) पुरुषों पर होता है। जो पुरुष किसी के हाथ बिक नहीं सकता, जो खरीदा नहीं जा सकता, वह विद्वान् ही राष्ट्र का आधार होता है। आज इन पूज्य पुरुषों के अभाव में भारत दु:खी है।

ब्राह्मण से भारत का गौरव- मनु-निर्दिष्ट मार्ग पर चलनेवाले इन्हीं ब्राह्मणों के गीत ह्वेनसांग, अलमासूदी, अलबेरूनी, निकोला, मनूची और कर्नल विल्फर्ड ने गाये हैं।[२] मार्शमैन ने भी लिखा है-

"The directors of the East India Company opposed their (Christian missionaries) activities on the ground, among others, that these would interfere with the Hindu Religion, which produced men of purest morality and strictest virtue."

निस्सन्देह आर्यधर्म ने पवित्रतम आचार और शुभ्र गुणयुक्त नर उत्पन्न किये थे।

इसका सारा श्रेय मनु और तदनुकूल आर्यराज्य को है। मनु का सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण वही है, जिसकी सांसारिक वासनाएँ लघुतम हों मनु की संस्कृति के प्रासाद की छत के स्तम्भ राजगण नहीं, ऋषि और श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं।

दोषी ब्राह्मण को चतुर्गुण दण्ड- ज्ञानवान् ब्राह्मण पूज्य है। वह श्रद्धा का स्थान है। पर दोषी होने पर मनु ने उसको छोड़ा नहीं। वह **वाक्पारुष्य** आदि अधर्म करे, तो शूद्र की अपेक्षा उस पर दण्ड चतुर्गुण होता है। इसका स्पष्ट उल्लेख मनु ८/२६८।। में है। मनु ने ब्राह्मण की रियायत नहीं की। हाँ, ब्राह्मण के ज्ञान की रक्षा के लिये उसे अवध्य अवश्य कहा है। अन्यत्र स्तेय आदि में ब्राह्मण को शूद्र की अपेक्षा आठ गुणा वा सोलह गुणा दण्ड कहा है। ८/३३७, ३३८, ८/३४०, ३७३ भी द्रष्टव्य हैं।

दुष्ट ब्राह्मण की निन्दा- धर्मध्वजी, दुष्ट, वैडाल-व्रतिक, कठोर और छली ब्राह्मण की मनु ने घोर निन्दा की है-४।१९५-१९७।।

नि:शुल्क शिक्षा- ब्राह्मण संचय (Hoard) नहीं करता था। उसका निर्वाह दक्षिणा पर था, अथवा उस भूमि पर था, जो राज्य की ओर से उसे मिलती थी। शतश: प्राचीन ताम्र शासन, जो आज भी मिलते हैं, इस बात का प्रमाण हैं। ये ब्राह्मण जाति को शिक्षा देने के काम में लगे रहते थे। अत: मनु ने शिक्षा का नि:शुल्क प्रसार बताया है। राज्य की ओर से शिक्षा पर कोई धन विशेष व्यय नहीं किया जाता था। भृतकाध्यापक अर्थात् वेतन लेकर पढ़ानेवाले ब्राह्मण की निन्दा की गयी है- ३।१५६। छात्र ऐसे ब्राह्मणों के पास रहकर अनुशासन और विनय सीखते थे।

ब्राह्मण भूमि का कर्षण स्वयं नहीं करते थे। अत: जो शूद्र उनके निमित्त भूमि-कर्षण करते थे, वे उनके सत्संग से श्रेष्ठ गुण सीखते थे । वे पतित होने की ओर नहीं झुकते थे। राष्ट्र में सदाचार का स्तर पर्याप्त ऊँचा रहता था।

मनु की व्यवस्था सर्वतोमुख सुख का प्रसार करती है।

क्षत्रिय प्रभुत्व का अभाव- मनु ने क्षत्रिय का अथवा राजा का प्रभुत्व नहीं रहने दिया। वह दण्ड चलानेवाला था। अपनी मनमानी नहीं कर सकता था। साधारण अथवा प्राकृत जन की अपेक्षा दोषी ठहरने पर राजा को सहस्र गुणा दण्ड विहित है-३/३३६।। राजा पर दण्ड का अधिकार श्रेष्ठ ब्राह्मणों को था। मनु-प्रदर्शित शासन अत्यन्त गहरा और कठोर है। इसमें किसी की रियायत नहीं; सिफारिश नहीं।

वेद-विद्या-रहित राज्याधिकारी नहीं- आर्यराज्य में कोई राजा, कोई राष्ट्रकर्णधार वेद-विद्याविहीन नहीं होना चाहिये। वेदाध्ययनशून्य क्षत्रिय भी राज्य का अधिकारी नहीं है। अतएव मनु कहता है-

ब्राह्मण प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्।। (७/२)

अर्थात्- क्षत्रिय को ब्राह्म संस्कार अर्थात् वेद पढ़ने का सारा क्रम पार करना होगा। वही न्यायपूर्वक राष्ट्र का रक्षण कर सकता है।

आज भूमण्डल के वेद-ज्ञान्य शून्य शासक शतश: अन्याय कर रहे हैं। प्रजा पीड़ित हो रही है।

मनु पुन: कहता है-

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हती।। (१२/१००)

अर्थात्- सेना-संचालन, राज्य और दण्ड-विधान के नेतृत्व=दण्ड-प्रणयन, अपि च सम्पूर्ण संसार के आधिपत्य के योग्य वेद-शास्त्र का ज्ञाता ही होता है।

इससे ज्ञात होता है कि धनुर्वेद की सम्पूर्ण शिक्षा वेद से मिल सकती है। निस्सन्देह वेद के इन्द्र और मरुत् देवता-विषयक सूक्तों में सैनिक ज्ञान के रहस्य अथवा

सूक्ष्म तत्त्व ओत-प्रोत हैं।

राज्य-दण्ड पर आश्रित- मनु ने दण्ड की महती प्रशंसा की है। वस्तुतः दण्ड पर ही सारा लोक आश्रित है। वर्णाश्रम दण्ड से ठीक चलते हैं-७/१७-२९।।

राजा त्रिवर्ग का पण्डित- त्रिवर्ग में धर्म, अर्थ और काम की गणना होती है। शासक को इन तीनों का ज्ञाता होना चाहिये। वह धर्मकामार्थकोविद होना चाहिए-७/२६। धर्म का ज्ञाता अर्थात् कानून का ज्ञाता। इसमें वह शाश्वत-धर्म भी सम्मिलित है, जो आदिकाल से चला आ रहा है। काम का ज्ञाता अर्थात् प्रजा-सुख के अखिल साधनों का ज्ञाता और अर्थ का ज्ञाता अर्थात् सम्पूर्ण अर्थशास्त्र-विद्याओं का पण्डित।

आज इस महान् ज्ञान के बिना ही अगणित लोग लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव लड़ते हैं। देश का इससे अधिक दुर्भाग्य और क्या हो सकता है!

कठोरता की पराकाष्ठा- राजा का कर्तव्य है कि दोषयुक्त अथवा धर्मविहीन होने पर अपने पिता, आचार्य, मित्र, माता, भार्या, पुत्र और पुरोहित को भी दण्ड दे। वहाँ दया आदि का कोई अवकाश नहीं।

राष्ट्र में शूद्र-संख्या न्यून रहे- मनु निरन्तर प्रोत्साहन देता है कि देश में शूद्र-संख्या न्यूनतम होनी चाहिये। वह प्रत्येक पुरुष को अवसर देता है कि शूद्र मत रहो। इसीलिये मनु आचारहीन, आलस्ययुक्त और अन्न-दोषवाले ब्राह्मण को गर्हित कहता है।[३] वह पतित ब्राह्मण को भी शूद्र ही बना देता है। उसका ध्येय मनुष्यमात्र को उन्नत करना है। इसलिए उसने स्पष्ट कहा है-

यद् राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तम् अद्विजम्।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम्।। (८/२२)

अर्थात् जो राष्ट्र शूद्रों की अधिकता से भरा पड़ा है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

जघन्य शूद्र- जिस प्रकार से श्रेष्ठ और साधारण ब्राह्मण का सदा भेद है, उसी प्रकार अति निकृष्ट और उत्कृष्ट शूद्र का भी भेद है। शूद्र जघन्य भी है। वह कौन है? अज्ञानी, स्वार्थी, लोभी, व्यसनी, धर्म-मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला जघन्य शूद्र है। ऐसे लोग राष्ट्र-हनन का कारण बनते हैं। जो शिल्पी लोभ आदि दुर्गुणों से रहित, परन्तु अज्ञानी है, वह शूद्रों में श्रेष्ठ है। मनु उसे ज्ञानमार्ग का अवलम्बी बनाकर उसके लिये ऊँचा मार्ग खोलता है। जिस मनु ने शूद्र के लिये ऊँचा मार्ग खोला है, उसका मानवमात्र के लिये महान् प्रेम है।

अमात्य-शुद्धि- मनु ने मन्त्रियों की शुचिता पर बहुत बल दिया है। उसी को ध्यान में रखकर विष्णुगुप्त ने अमात्यों पर भी राजा के अन्तरंग गुप्तचरों की व्यवस्था बताई है। रामायण में वाल्मीकि ने प्रशंसापूर्वक लिखा है कि दशरथ के अमात्य अत्यन्त शुद्ध और अनुकरणीय जन थे।

कूट आयुध और माया-निन्दा- मनु ने ७/९०।। में कूट-आयुधों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। आज का संसार इस दिशा में तंग हो रहा है। ये कूट-आयुध विनाश का कारण बनेंगे। इनके साथ मनु ने ९/१०४।। में माया-युद्ध की भी निन्दा की है। श्रीकृष्ण जब शाल्व के साथ युद्ध कर रहे थे, तो शाल्व ने माया-युद्ध आरम्भ कर दिया। इसका प्रतिकार तो कृष्ण ने कर दिया, पर अपनी ओर से इसका प्रयोग नहीं किया।

अस्त्रों के विषय में भी धनुर्वेद-आचार्य मनु के आदेश का ध्यान रखते थे। जब सर्वास्त्र सीखकर अर्जुन हिमालय में अपने भाइयों से मिला, तो उन सबने अस्त्रों के चमत्कार देखने की इच्छा प्रकट की। अर्जुन ने अस्त्र चलाये। उस घटना का ज्ञान होते ही इन्द्र आदि आचार्य उस स्थान पर आये। उन्होंने पाण्डवों से कहा युद्ध के बिना अस्त्र का प्रयोग वर्जित है, इस चमत्कार-दर्शन के विचार को त्याग दो। तब ऐसा ही किया गया। महाभारत के सर्वनाशक युद्ध में भी अर्जुन ने केवल एक दिन पाशुपतास्त्र का प्रयोग किया था।

यह अन्तर्राष्ट्रीय नियम होना चाहिये कि अस्त्रों का प्रयोग युद्ध के सिवा अन्यत्र न हो। कभी संसार मनु की आज्ञा का पालन करता था। तब इतने विनाश का महाभय नहीं था।

आश्रम- आश्रमों की मनु-प्रणीत मर्यादा लोकहित का गुह्यतम निदर्शन है। ब्रह्मचारी सीधा-सादा रहता है। वह बूट और जूता नहीं पहनता। उसके वसन अति थोड़े होते हैं। वह नगरों के विषाक्त स्थानों से परे रहकर एकान्त

में विद्याभ्यास करता है। उसका भोजन भी सादा और ब्रह्मचर्यवर्धक होता है। वह विनीत और संयतेन्द्रिय बनता है।

३. मनु धन्यवाद का पात्र– ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तथा च ब्राह्मण और शूद्र को अत्यन्त सादा और न्यूनतम आवश्यकताओं वाला बनाकर मनु ने समाज की आर्थिक समस्याओं का एक विशिष्ट हल दिया है।

आजकल के स्कूल और कॉलेजों के छात्र जिस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं, उसके कारण शौकीनी उच्च शिखर पर पहुँच रही है। देश के छात्रों के कोट और जूतों को तैयार करने के लिये ही लाखों लोग शूद्र बन रहे हैं। इस पर इतना भय नहीं था, पर उन लाखों शूद्रों की पर्याप्त संख्या भी जघन्य शूद्र बन रही है।

आदर्श 'Standard' की होड़- आज वानप्रस्थ के लिये कोई स्थान ही नहीं रहा। संन्यासी समाप्त से हो रहे हैं। इस Standard ऊँचा करने की दौड़ में सब पिस रहे हैं। Standard केवल क्षत्रिय और गृहस्थावस्था वाले का अपेक्षाकृत उठना चाहिये। शेष का Standard सादगी रहे तो देश की आर्थिक तुला के पलड़े समावस्था में रहेंगे, अन्यथा आदर्श ऊँचा करते-करते देश ही समाप्त हो जायेंगे। आचार का आदर्श वास्तविक आदर्श है। धन का आदर्श उससे बहुत नीचा स्थान रखता है।

३. आचार- भारतवर्ष के सम्पूर्ण धर्मशास्त्रकारों ने अपने-अपने ग्रन्थों में आचार का अध्याय अत्यन्त आवश्यक समझा है। इसका कारण है, मनु ने आदि में आचार पर अति बल दिया था उसी का अनुकरण उत्तरवर्ती शास्त्रों में हुआ। आर्य ऋषि-मुनि जानते थे कि मानवजीवन की यात्रा आचार के पाथेय पर आश्रित है। आचार से आयु मिलता है, आचार से प्रजाएँ गुणवती होती हैं, आचार से अक्षय धन-परलोक का सहायक धन मिलता है। आचार मानव-लक्षणों का उल्लंघन करके सुख की वर्षा करा देता है। मानव-लक्षण का अभिप्राय है, सम्पूर्ण शरीर के-माथा, आँख, दाँत, बाहु, अँगुलियों आदि के लक्षण।

आचार क्या है– आचार में सारे संस्कारों की गणना है। आचार में सोना, उठना, खाना, पीना, गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा के व्यवहार के नियम हैं। फिर रात्रि के समय सिर किस ओर करके सोना चाहिये, यह भी आचार का अंग है। आचार परम धर्म है-१/१०८।। इस आचार के अभाव में सारा भारत पीड़ित हो रहा है।

वर्तमान सरकार की आचार-संहिता- सुनते हैं, आजकल आचार-संहिता, सम्भवत: चुनाव-विषयक आचार-संहिता बनाने पर बड़ा शोर मच रहा है। भला ये लोग, जो शाश्वत-ज्ञान से शून्य हैं, सब त्रुटियों को दूर करनेवाली कैसी आचार-संहिता बनायेंगे?

धनाधिकार- अब एक ऐसी बात की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं कि जिसका संसार में बड़ा कोलाहल है। धन का अधिकारी कौन है? धन किसके पास रहना चाहिये?-यह प्रश्न सदा से आवश्यक रहा है। मनु का उत्तर है- धन पर अधिकार राष्ट्र और व्यक्ति दोनों का है।

राज्याधिकार- राज्य का भूमि, भूमि की उपज, नदियों, जंगलों, पशुओं, खानों व करों (Tax) आदि पर अधिकार है। राज्य के द्वारा ही यह अधिकार व्यक्ति को मिलता है। तदनुसार व्यक्ति भूमि ले सकता है, उस पर अपना घर बना सकता है। उस पर कृषि करके राज्य-कोश में कर दे सकता है, इत्यादि। जहाँ राजा को यह अधिकार प्राप्त है, वहाँ प्रजा का संरक्षण राज्य का सर्व-आवश्यक कर्तव्य है।

कैसे व्यक्ति के पास धन रह सकता है- इस जटिल समस्या का मनु से अधिक अच्छा हल आज तक किसी ने उपस्थित नहीं किया। मनु कहता है-

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः समप्रयच्छति।
स कृत्वा प्लवमात्मानं सन्तारयति तावुभौ।। (११/१९)

अर्थात्-जो पुरुष असाधु=कंजूस, दुष्ट, अतिलोलुप आदि से धन को छीनकर साधु=भले पुरुष को धन दे देता है, वह अपने शरीर को नौका बनाकर उन दोनों, साधु तथा असाधु को तार देता है।

निष्कर्ष- सूक्ष्मदर्शी मनु ने संसार को मार्ग दर्शा दिया है। जो पुरुष साधु है, जो दानशील, दयावान, पर-दु:ख निवारक है, उसके पास धन रह सकता है; पर जो केवल संचयशील, स्वार्थी, व्यवहार में दम्भी, कृष्ण-व्यापार[४] करनेवाला, व्यसनी, चोर, डाकू आदि है, वह असाधु है, उससे धन छीन लेना चाहिये। जिस प्रेष्य=नौकर अथवा मजदूर ने सिगरेट, शराब व जुए आदि में धन गँवाना है,

उसके पास धन नहीं रहना चाहिये। जिस धनी ने विवाह आदि के समय शराब और वेश्याओं पर, अथवा साधारण समय में जोड़ने के लिये ही धन कमाना है, उसके पास भी धन नहीं रहना चाहिये।

मनु की इस स्पष्टोक्ति की व्याख्या महाभारत, शान्तिपर्व के कई स्थानों में मिलती है।

बृहस्पति की व्याख्या- धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के महान् आचार्य बृहस्पति ने अनुपम शब्दों में इस असाधुपन का व्याख्यान किया है। देखिये-

सभा-प्रपा-देवगृह-तडागाराम-संस्कृतिः।
तथानाथ-दरिद्राणां संस्कारो योजनक्रियाः।।
पालनीयाः समर्थैस्तु यः समर्थौ विसंवदेत्।
सर्वस्वहरणं दण्डः तस्य निर्वासनं पुरात्।।

अर्थात्- सभाएँ, बड़े-बड़े भवन जिनमें अनेक साँझे काम हो सकें, प्याऊ, अग्निहोत्र के स्थान, महान् तालाब तथा उद्यान आदि बनाना अथवा टूटने-फूटने पर उनका संस्कार व मरम्मत कराना तथा च अनाथ और लंगड़े-लूले दरिद्रों को वस्त्रादि देना और उनका जीवन-निर्वाह कराना, ये काम समर्थ धनी लोगों के हैं। जो धनी इन श्रेष्ठ कर्मों को करने में आनाकानी करे, उसका सर्वस्व राजा छीन ले और उसको नगर से बाहर निकाल दे, अथवा राष्ट्र से निकाल दे।

मनु ने धन-विभाजन की तुला के पलड़े ठीक रखने के लिये मानव की उच्च प्रवृत्तियों को जगाया है और मार्क्स ने मानव की नीच-प्रवृत्तियों को उभारा है।

श्रोत्रिय परमसाधु- श्रोत्रिय वह पुरुष है, जो सदा वेदाभ्यास में लगा रहता है। जो उच्च ज्ञान का पुञ्ज है, वह तो अकर (Tax free) है। मनु लिखता है-

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात् करम्।। (७/१३३)

अर्थात्-अत्यन्त कष्ट के समय भी राजा श्रोत्रिय से कर ग्रहण न करे।

आर्य राज्य में यह प्रथा सदा स्थिर रही है। चम्बा आदि राज्यों में ब्राह्मण की भूमि सन् १९४७ तक अकरी थी।

वर्तमान में इस प्रथा के नष्ट होने से उच्च आदर्श के लोगों का अभाव-सा हो रहा है।

गो-आदर- महामना मनु परम गो-भक्त हैं। मनु ने यह भाव वेद से सीखा था। गो शब्द का वेद में वाणी, किरण, भूमि, इन्द्रिय, गो-पशु और गो पशु के विभिन्न दूध आदि विकारों के लिये प्रयोग हुआ है। मनु के ११/१०८-११६।। में गो पशु के हनन हो जाने पर उसके प्रायश्चित्त के प्रसंग में गो-महिमा भी वर्णित है।

गो-महिमा क्यों- जब गो एक पशु है, तो आर्यों में उसकी इतनी महिमा क्यों है? इसका उत्तर महाभारत के एक प्रसंग में है। पाठक, यह सारा जगत् अग्नीषोमीय है। सोम एक अति सूक्ष्म पदार्थ है, जो इस प्राणी-जगत् का एक आधार है। वह सोम पहले देवलोक (द्यु-लोक) में था। उसके नीचे आने का भी एक रहस्य है। सोम के आने और यहाँ भूमि के उदक के साथ मिलने से ही सारे उद्भिज संसार की उत्पत्ति हुई है। अब भी यह सोम सूर्य और चन्द्र के योग से पृथ्वी पर आता है और सारा ओषधि-वनस्पति-संसार हरा-भरा रहता है।

यही सोम गो में सबसे अधिक है। इसीलिए गो-दुग्ध, गो-घृत और गो-मूत्र तक श्रेष्ठ माने गये हैं। इसी गो-गोबर का लेपन रोगनाशक है। फलतः मानव पर महान् कल्याण करनेवाली गो उसकी माता कही गयी है। वर्तमान काल के महामूर्ख, व्यसनी लोग जो वेद में गो-हनन का वर्णन निकालते हैं, वे मानव के शत्रु और दुष्ट-भाव-भावित हैं।

कल्याण चाहनेवाला, अपने हीन-भाग्य का प्रायश्चित्त करनेवाला-

तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत्।
आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः।। (११/१११)

खड़ी हुई गौओं के साथ खड़ा रहे, चलती हुई के पीछे-पीछे चले, बैठी हुई के पीछे बैठ जाये, वह अभिमान आदि को त्याग देवे।

गौ की महिमा लगभग इन्हीं शब्दों में उत्तरकालिक सब स्मृतिकारों ने की है। अंगिरा, यम आदि ने मनु के ही शब्द दोहराये हैं। शंख-लिखित ने भी कहा है

गा रक्षेत। तास्वपीतासु न पिबेत्।
न तिष्ठन्तीषूपविशेत न स्वयमुत्थापयेत्।[१]

हरिषेण (कालिदास) ने रघुवंश १/८९ में दिलीप की

शिक्षा में लगभग यही शब्द वर्ते हैं।

आर्य संस्कृति- आर्य संस्कृति में गो, ब्राह्मण की महिमा अपार है। ब्राह्मण के ज्ञान पर और गो के सोमांश पर संसार का आधार है।

कर- मनु के अनुसार सुखी राष्ट्र वही है, जहाँ कर साधारण है, जहाँ श्रोत्रिय ब्राह्मण पर तो कर है ही नहीं। ९/३०४, ३०५।। में मृदु कर-ग्रहण का विधान है। कर क्षत्रिय और वैश्य पर तथा शूद्र-कृषक पर लगता है। व्यापारी वैश्ववर्ग के अन्तर्गत हैं, उन पर भी कर लगता है। यदि कर अत्यधिक हो जायेंगे, तो प्रजा कभी क्रान्ति कर देगी। मनु के अभिप्राय को याज्ञवल्क्य ने अति स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर दिया है

प्रजापीडनसन्तापात् समुद्भूतो हुताशनः।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणाञ्चादग्ध्वा न निवर्तते।।

अर्थात्- प्रजापीड़न के सन्ताप से पैदा हुआ अग्नि राजा (राष्ट्र) के कुल, श्री और प्राणों को बिना जलाकर राख किये नहीं शान्त होता।

आज भी इस दुःख से भारतीय प्रजा ग्रस्त हो रही है। मजदूर और उच्च वेतनभोगी, तथा च ठेकेदार और कृष्ण-व्यापार (कालाबाजारी) करनेवालों के अतिरिक्त सब सामान्य प्रजा अत्यन्त दुःखी हो रही है। इसका परिणाम भयावह होगा।

कर्षण और संग्रह- राजा के लिये कर्षण=शोषण अनिष्ट है। इस शोषण से राष्ट्र नष्ट हो जाता है-७/१११-११२। शोषण व्यक्तियों द्वारा भी बुरा है और राज्यों द्वारा भी बुरा है। कम्युनिस्ट सरकारें भी अपरिमित शोषण कर रही हैं। निस्सन्देह वे नष्ट हो जायेंगी।[६] त्रिकालदर्शी मनु का कथन सिद्ध होकर रहेगा। राष्ट्र का संग्रह अथवा सर्वप्रकार से रक्षण ही राजा का कर्तव्य है।

वणिक्-कर- सब वणिजों पर कर समान नहीं लगेगा। मनु ने यहाँ भी एक गम्भीर नियम का आदेश किया है। वह कहता है-

क्रय-विक्रयम् अध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम्।
योगक्षेमं च संवेक्ष्य वणिजो दापयेत् करान्।। (७/१२७)

अर्थात् -खरीद का दर, बिक्री अथवा बेचने का भाव, माल पर मार्गव्यय, माल लाने आदि के नौकरों पर खर्च तथा च अन्य सारे खर्च लगाकर, चोर आदि से रक्षा पर चौकीदार आदि का व्यय देखकर प्रत्येक व्यापारी पर कर लगेगा।

यहाँ पर सब एक रस्से से बाँधे नहीं गए। प्रत्येक की परिस्थिति विचारणीय रहनी चाहिये।

यह सूक्ष्म व्यवस्था मनु ने ही दी थी। आज इसका प्राय: अभाव है।

कर-समाहर्ता- करों के एकत्र करनेवाले आप्त पुरुष हों-७/८०।। आप्त लोग सत्य बोलने, सत्य मानने और सत्य करनेवाले होते हैं । इस कर-शुद्धि पर बड़ा बल दिया गया है। करों के ग्रहण करने में राजा आम्नाय-पर हो। वह स्वयं करमात्रा निर्धारित नहीं कर सकता। कर का अनुपात वेदादि शास्त्रों में निश्चित है।

वेतन-अनुपात- राजा के निरीक्षण में अनेक विभाग रहेंगे। घर के भृत्य से पाचक तक, ड्राफ्ट्समैन से सर्वोत्कृष्ट वास्तुविद् (इन्जीनियर) तक, छोटे क्लर्क से अध्यक्ष (सुपरिण्टेण्डेण्ट) अथवा सचिव तक, इत्यादि के वेतन-विषय में मनु की सूक्ष्मेक्षिका का निदर्श आगे देखिए-

पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुकृष्टस्य वेतनम्।
षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः।।
(७/१२६)

अर्थात्- यदि छोटे भृत्य को एक पण अथवा एक रुपया दिया जाता है, तो छह रुपया उत्कृष्ट-बड़े का वेतन होगा। साधारण भृत्यों की अवस्था में वरदी अर्थात् वस्त्र प्रति छह मास के पश्चात् देने चाहिये और धान्य का द्रोण प्रतिमास देना चाहिये।

यहाँ एक और छह का अनुपात आश्चर्यजनक है। संसार के थोड़े देशों में, वर्तमान काल में, परम सभ्यता का यह आदर्श दृष्टिगोचर होता है।

वेतनों का अधिक अन्तर दुःख-कारण- वेतनों का वर्तमान अन्तर महान् दुःखों का कारण है। समाज में अधिक भेद यहीं से उत्पन्न होता है। भारत में आज चपरासी का वेतन लगभग ५० रु. से ७५ रु. मासिक है और उच्च मन्त्रियों का वेतन ३०००० रु. से ५०००० रु. तक पहुँचता है। यह अन्धेर आर्य-राज्य ही दूर कर सकता है।

विद्या वेश्यावत् बिकती है- वेश्या अपनी चमड़ी

बेचती है और विद्यावान् अफसर अपनी बुद्धि बेचता है। इन दोनों में अधिक अन्तर नहीं है। जब विद्यावान् को निश्चय हो जायेगा कि उसका ज्ञान रुपया एकत्र करने की लालसा-पूर्ति की दूर सीमा तक नहीं जायेगा, तो वह केवल रुपया कमाने के लिये ही विद्या नहीं पढ़ेगा। वह ज्ञान के लिये भी ज्ञानोपार्जन करेगा। अतः देश में यथार्थ समता उत्पन्न होगी। आज सब लोग नौकरी के लिए पढ़ते हैं। ब्राह्मणत्व का उद्देश्य ही नष्ट कर दिया गया है। अन्तः इस लालसा के दुःख से निवृत्ति होनी चाहिये।

काम का नियंत्रण- यूरोप की वर्तमान विचारधारा में फ्रायड का स्थान विशेष है। जिस प्रकार मार्क्स ने लोभ की विचारधारा को गुप्त प्रोत्साहन देकर मजूर को उच्छृंखल करके उसकी परम शत्रुता की है, उसी प्रकार फ्रायड ने काम का महासंशुद्ध विश्लेषण करके इसे वृथा प्रधानता दी है। मनु स्पष्ट कहता है-

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः।। (२/२)

अर्थात्- काम में लीन हो जाना प्रशस्त नहीं और न इस मानव-देह में कामरहित होना ही उचित है।

गीता में-मनु के उपदेश की व्याख्या भगवान् कृष्ण ने की है। फ्रायड के कलुषित मार्ग का ज्ञान भगवान् को पहले से था। उसकी निन्दा में गीता का श्लोक है-

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थम् अन्यायेनार्थसञ्चयान्।। (१६/१२)

अर्थात्- काम-परायण लोग अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिये अन्याय से अर्थों का सञ्चय चाहते हैं।

यूरोप में फ्रायड का खण्डन पूरा नहीं हुआ। भारत की पुण्यभूमि भी संस्कृत-विद्या के अभाव में उसी गर्त में गिर रही है।

दुष्प्रकार से अर्थसञ्चय का विरोध वेद से चला था- **मा गृधः कस्यस्विद् धनम्**- मत लालच करो किसी के धन का। सूक्ष्म दृष्टि से वेद ने यह भी बता दिया है कि धन का स्वामी व्यक्ति भी होता है।

काम पर पूरा नियन्त्रण करके मानवयात्रा सफल होती है। काम स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखता। यही स्थान फ्रायड ने नहीं समझा। काम का मूल संकल्प है। इसीलिए शान्तिपर्व में काम जीतने का प्रधान उपाय बताया है **कामं संकल्प-वर्जनात्।** काम को जीते संकल्प के वर्जन से। फ्रायड ने अधूरा अंश लेकर मिथ्या-विचार प्रचलित किया है। यह अंश मनु को ज्ञात था। मनु कहता है-

यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत् कामस्य चेष्टितम्।।
(२/४)

अर्थात्- सम्पूर्ण कर्म काम की चेष्टा द्वारा है।

इस कर्मक्षेत्र को श्रुति नियन्त्रित करती है। मनु ने उसी का संकेत किया है। फ्रायड इस सूक्ष्मता से वञ्चित रहा है। इस काम-नियन्त्रण को धर्मशास्त्रों और अर्थशास्त्रों में इन्द्रिय-जय कहा है। मनु इस दिशा में सबसे महान् पथ-प्रदर्शक है।

पथ-प्रदर्शक और कल्याण के मार्ग का प्रदर्शक ही सबसे बड़ा हितैषी और मित्र होता है। मनु ने यह काम असाधारण सफलता से किया है। वस्तुतः भगवान् मनु मानव का परममित्र है। मनु को त्याग कर पाश्चात्य और उसका अनुकरण करनेवाले दुःख-सागर में डूबे रहे हैं।

टिप्पणी

१. सर्वो दण्डजितो लोकः। मनु ७/२२

२. देखो, भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग प्रथम, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ६३-६५

3. मनु ५/४

४. 'कृष्ण व्यापार' शब्द का प्रयोग नारद आदि स्मृतियों में है।

५. स्मृति-चन्द्रिका, आह्निक काण्ड, पृष्ठ ४५० पर उद्धृत।

६. वैदिक वचनों के आधार पर ६० वर्ष पूर्व की गई लेखक की यह भविष्यवाणी अधिकांश में सत्य हो गई है। विशाल देश रूस और दर्जनों छोटे देशों से कम्युनिस्ट शासन नष्ट हो चुका है। मुख्य देश चीन अभी शेष है। उसके नष्ट न होने का कारण उसकी व्यवस्था में कुछ परिवर्तन कर लेना है। वहाँ के कम्युनिस्ट शासन में लचीलापन आ गया है। -सम्पादक

७. श्री होरीलाल सक्सेना जी के अनुसार वर्तमान कम्युनिस्ट देशों में इस अनुपात को ध्यान में रखने का यत्न है।

व्रज से कठोर तथा फूल से कोमल थे स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज

कन्हैयालाल आर्य

संस्कृत साहित्य के एक उज्ज्वल रत्न थे कवि भवभूति। उन्होंने एक नाटक की रचना की है जिसका नाम है 'उत्तररामचरितम्'। इस पुस्तक में भवभूति ने भगवान् राम का उस समय का वर्णन किया है जब उनकी धर्मपत्नी सीता जी का अपहरण हो जाता है। भगवान् राम वहाँ पर वन के वृक्षों, वहाँ विद्यमान पक्षियों, पशुओं, वनस्पतियों, पर्वतों, नदी-नालों से भावविह्वल होकर सीता का पता पूछते हैं। उस समय सीता की एक सखी वासन्ती राम के कोमल रूप को देखकर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहती है-

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।।

उत्तम पुरुषों का चरित्र वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल होता है, उन्हें जानने के सम्बन्ध में कौन समर्थ हो सकता है? अर्थात् वासन्ती ने जिस राम के वज्र स्वरूप को देख रखा था, वह उनके कुसुम रूप को देखकर आश्चर्य व्यक्त करती है। इसी प्रकार हम जब अपने चरित नायक स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज के जीवन को देखते हैं तो हमें अनायास यह उक्ति उनके जीवन से सम्बन्धित लगती है। यदि उनके जीवन का निकटता से मूल्यांकन किया जाये तो वह है-

''नारिकेल समाकारा दृश्यन्ते खलु सज्जना:''

जिस प्रकार नारियल ऊपर से कठोर होता है, परन्तु उसके अन्दर अमृततुल्य जल एवं कच्ची गिरी होती है। इसी प्रकार स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज का जीवन नारियल की सही व्याख्या है।

''स्वामी रामेश्वरानन्द जी नि:सन्देह कर्मयोगी थे। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलनों, हैदराबाद सत्याग्रह और विशेषत: पंजाब के हिन्दी सत्याग्रह में अपने साहस और कार्य-कुशलता का जो परिचय दिया, वह हम सब जानते हैं। जब पंजाब में फूट की भयंकर अग्नि अकाली भाइयों की भूल से भड़कने वाली थी तब स्वामी जी ने अपनी त्यागपूर्ण बलिदानी भावनाओं से प्रेरित होकर जो मार्ग प्रशस्त किया उससे हमें नि:सन्देह गौरव प्राप्त हुआ है।''

ये उपरोक्त भावनायें थीं तत्कालीन सार्वदेशिक सभा के प्रधान स्वामी ध्रुवानन्द जी महराज की। ये विचार उन्होंने स्वामी रामेश्वरानन्द जी की उस सफलता पर प्रकट किये थे जब स्वामी जी, पंजाब के अकालियों, विशेषकर मास्टर तारासिंह की पंजाबी सूबा बनाने की हठधर्मी के कारण अनशन पर बैठने के विरुद्ध स्वयं भी आमरण अनशन पर बैठ गये। तभी मास्टर तारासिंह अपनी कुचालों में असफल हुआ था और उसी का यह परिणाम था कि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने मास्टर तारासिंह को 'जूते और झूठे बर्तन साफ करने' का दण्ड दिया था।

जन्म, बचपन एवं संन्यास की दीक्षा- उत्तर प्रदेश का बुलन्दशहर जनपद एक ऐसा सौभाग्यशाली स्थान है जिसे आर्यसमाज की कई महान् विभूतियों को जन्म देने का श्रेय प्राप्त है, उनमें से थे स्वनामधन्य पूज्य स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज! आपका जन्म बुलन्दशहर के छोटे से ग्राम कुरैव में जाखड़ गोत्र में रामरूप नाम से हुआ। आपका बचपन अत्यन्त दु:खद वातावरण में व्यतीत हुआ। छ: मास की अवस्था में माता और दस-बारह वर्ष की आयु में पिता का देहान्त हो गया। माता-पिता के अभाव में आपके मन में वैराग्य के बीज उत्पन्न हो गये और भगवद्भजन में मग्न रहने के साथ साधु-महात्माओं का संग करने लगे। १४-१५ वर्ष की आयु में घर छोड़कर संन्यास लेने का निर्णय कर लिया। साधु-सन्तों की संगति में आध्यात्मिक तृप्ति नहीं हुई तो आप संस्कृत की नगरी काशी में पहुँच गये और वहाँ गुजराती संन्यासी स्वामी कृष्णानन्द जी से संन्यास की दीक्षा लेकर स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती बन गये।

गुरु से मिलन- आप अपनी आत्मा की तृप्ति के

लिए काशी में न टिके, अपितु काशी से प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन होते हुए दिल्ली पहुँच गये। वहाँ यमुना नदी के किनारे एक सुरीली आवाज ने आपको आकर्षित किया। वहाँ जाकर देखा कि एक महात्मा अपने भजनोपदेश द्वारा तर्कपूर्ण बातें कर रहे हैं। वहाँ पर खड़े एक सज्जन ने इस महात्मा के बारे में बड़ी कड़वी बात कहीं, ''हम तो पहले ही कहें ये आर्यसमाजी कुत्ता हो कुत्ता, जिनके पीछे पड़ जायें छोड़े नायं।'' यह वाक्य सुनकर स्वामी जी चौंके और उस महाशय से पूछा, ''कौन है आर्यसमाजी?'' वह सज्जन बोले, ''तोय न पतो ये जो भोंक रहयो है, ये आर्यसमाजी तो है।'' यह सुनकर स्वामी रामेश्वरानन्द जी सिर से पैर तक काँप गये, क्योंकि उन्होंने सुन रखा था, जो आर्यसमाजी की बात सुन लेता है, वह नरक में जाता है। अब बात सुनना तो दूर, आर्यसमाजी के दर्शन भी हो गये। अब मेरा क्या होगा? कुछ देर किंकर्त्तव्यविमूढ़ से खड़े रहे। फिर मन में आया कि नरक में तो जाना ही जाना है, कम से कम इस बाबा की बात तो सुन लें। यह विचारकर महात्मा जी के व्याख्यान को अन्त तक सुना और सभा की समाप्ति पर उनसे प्रार्थना की कि वह मुझे अपना शिष्य बना लें। यह महात्मा कोई और नहीं थे, वह थे स्वामी भीष्म जी महाराज। इस प्रकार उनकी यह यात्रा अपने गुरु के मिलन के साथ पूर्ण हो गई। ये वह स्वामी भीष्म जी थे जिन्होंने अपने जीवन के १२३ वर्ष के दीर्घजीवन में आर्यसमाज को अनेक रत्न, महोपदेशक, विद्वान् एवं भजनोपदेशक दिये हैं जिनमें मुख्य स्वामी रामेश्वरानन्द जी, स्वामी ओमानन्द जी जैसे संन्यासी हैं।

गुरुकुल की स्थापना तथा सेवा-कार्य- स्वामी भीष्म जी का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि जो व्यक्ति केवल रामायण और हनुमान चालीसा का पाठ करने में ही मोक्ष मानता था अब वह न केवल भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का एक सेनानी बना अपितु हैदराबाद सत्याग्रह और हिन्दी सत्याग्रह आन्दोलन का अगुआ नेता भी बना। नमक सत्याग्रह में जेल गये। उस समय उनका एक ही नारा था- 'नमक कानून तोड़ दिया, अंग्रेजों का सिर फोड़ दिया।' पुलिस ने जाल बिछाकर उन्हें उस जेल में बन्दी बनाया जिसमें पं. जवाहरलाल नेहरू बन्दी थे। स्वामी जी राष्ट्रीय आन्दोलन में तो कूद ही चुके थे, इसके साथ ही वे महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट गुरुकुल प्रणाली को भी मूर्तरूप देना चाहते थे। अपने गुरु स्वामी भीष्म जी की प्रेरणा एवं अपने प्रिय शिष्य आचार्य धर्मवीर जी के सहयोग से १७ अप्रैल १९३९ को विधिवत् करनाल के निकट घरौण्डा में एक गुरुकुल की स्थापना की। १५ अगस्त १९४७ को देश स्वतन्त्र हो गया। धार्मिक उन्माद के कारण देश को कई यातनाओं का सामना करना पड़ा। स्वामी जी ने पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) से आये शरणार्थियों की जहाँ अन्न, वस्त्र से खूब सहायता की, वहाँ अपने निकटवर्ती सारे क्षेत्र को मुसलमानों से मुक्त करा लिया।

कर्मक्षेत्र- १९३९ में जब हैदराबाद के धर्मान्ध नवाब द्वारा हिन्दुओं के साथ अन्याय किया गया तो आप सैकड़ों मील दूर होते हुए भी ७२ आर्यवीरों का एक जत्था लेकर नवाब की संगीनों एवं गोलियों का प्रहार सहन करने के लिये हैदराबाद पहुँच गये। हैदराबाद जेल में आपने बहुत सारी यातनायें सहीं, परन्तु ऋषि दयानन्द का दीवाना बिल्कुल घबराया नहीं। नवाब के अन्याय के विरुद्ध सदैव अपने जीवन को आहूत करने में तत्पर रहा। देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् १९५७ जब में प्रतापसिंह कैरो ने अपना दमनचक्र हिन्दुओं पर चलाया तब निर्णय लिया गया कि आर्यसमाज हिन्दी और हिन्दुओं की रक्षा के लिये एक आन्दोलन चलाया जाये। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी महाराज एवं सभामन्त्री पं. जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती जी के अलग-अलग दो पत्र स्वामी जी को मिले उनमें लिखा था-

''हमने आपको हिन्दी सत्याग्रह का द्वितीय सर्वाधिकारी नियुक्त किया है। हम आशा करते हैं कि आप हमारी इस प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे।'' स्वामी जी ने एक अनुशासित सिपाही की तरह यह रण-निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार किया। स्वामी जी के इस आन्दोलन में कूदते ही पड़ौसी राज्यों में जोश का समुद्र उमड़ पड़ा। स्वामी जी को कई प्रकार से प्रताड़ित किया गया, परन्तु यह नरपुंगव 'रुकना झुकना क्या जाने' की उक्ति को चरितार्थ कर रहा था। स्वामी जी कई मास तक जेलों में रहे। इसी बीच स्वामी आत्मानन्द जी रुग्ण हो गये। हिन्दी आन्दोलन को

प्रचण्ड रूप देने के लिए श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त की अध्यक्षता में दिल्ली में सर्वसम्मति से स्वामी जी को 'हिन्दी रक्षा समिति पंजाब' का प्रधान चुना गया। इसी बीच मास्टर तारासिंह ने पंजाबी सूबे की माँग को लेकर आमरण अनशन की घोषणा कर दी। सभी हिन्दी-प्रेमी स्तब्ध रह गये। मास्टर तारासिंह की धमकी का उत्तर देने के लिये स्वामी जी ने भी अनशन प्रारम्भ कर दिया। पूज्य स्वामी जी महाराज ने अपना आमरण अनशन तब तक चालू रखा जब तक भारत सरकार की ओर से उन्हें इस विषय में आश्वस्त नहीं कर दिया गया कि पंजाबी सूबा नहीं बनेगा। इस विषय में तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू जी ने स्वामी जी को सम्बोधित करते हुए लिखा था।

''प्रिय स्वामी जी, आपने मेरा लोकसभा का बयान देखा और आज जो मैंने लोकसभा में कहा उसको आप कल समाचार-पत्रों में भी देखेंगे। इससे हमारी नीति साफ मालूम हो जायेगी। मैं तो समझता हूँ कि आपको अपना अनशन छोड़ देना चाहिये और मैं आशा करता हूँ कि यह आप करेंगे।''

२९-०८-१९६१

आपका

जवाहरलाल नेहरू

नेहरू जी द्वारा आश्वस्त किये जाने के उपरान्त स्वामी जी ने १६ अगस्त १९६१ से किया हुआ अपना आमरण अनशन ३१ अगस्त १९६१ को स्थगित कर दिया। उसी का परिणाम है कि देशविरोधियों का वह पंजाबी सूबे का सपना आज तक सफल नहीं हो सका। इनकी इस सफलता पर लाला रामगोपाल शालवाले ने कहा था, ''मास्टर तारासिंह जी के पंजाबी सूबे के स्वप्न को भस्मसात् करने में जो शानदार काम महाराज श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज ने किया है, उसे भारत देश के निवासी तथा समूची आर्यजनता कभी नहीं भुलायेगी।''

संसद यात्रा- इसी बीच लोकसभा के चुनाव घोषित हो गये। क्षेत्र के लोग एवं दूसरे जिलों तथा प्रान्तों के लोग स्वामी जी को लोकसभा में पहुँचाने के लिये कटिबद्ध हो गये। तब उन्हें अपने गुरु स्वामी भीष्म जी महाराज का आदेश मिला तो वे करनाल संसदीय क्षेत्र से चुनाव लड़ने के लिए तैयार हो गये। स्वामी जी ने चुनाव जीता और लोकसभा में संस्कृत भाषा में शपथ ग्रहण की। उनके सांसद बनने पर कुछ विरोधियों ने कहा, ''यह साधु संसद में जाकर क्या करेगा?'' परन्तु प्रथम अधिवेशन में ही स्वामी जी के प्रश्नों एवं भाषणों ने तहलका मचा दिया। श्री स्वामी जी वेतन और भत्ते के नाम पर जो कुछ संसद से मिलता था, वह सब अपने क्षेत्र के निर्धन व्यक्तियों की सहायतार्थ दे दिया करते थे। उन्होंने सांसद को फ्लैट व कोठी के रूप में मिलने वाली किसी भी सुविधा को स्वीकार नहीं किया। प्रतिदिन घरौण्डा से प्रात:काल ६ बजे चलने वाली रेलगाड़ी से दिल्ली आते थे। दिल्ली रेलवे स्टेशन से संसद भवन तक प्राय: पैदल ही आते थे और सायंकाल ६ बजे चलने वाली रेलगाड़ी से वापिस गुरुकुल घरौण्डा लौट आते थे। कभी कार्यवशात् रात्रि में दिल्ली ठहरना पड़ता तो आर्यसमाज सीताराम बाजार (अजमेरी गेट के पास) में ठहरते थे। वहाँ दिल्ली के अधिकारियों ने उनके ठहरने के लिये एक कमरा दे रखा था।

जब स्वामी जी ने संस्कृत में शपथ ली तो उनसे प्रभावित होकर ३३ अन्य सांसदों ने भी संस्कृत में शपथ ग्रहण की। यह एक अपूर्व दृश्य था। स्वामी जी से पूर्व लोकसभा का समस्त साहित्य अंग्रेजी में छपता था। हस्ताक्षर पंजिका में सदस्यगण अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते थे। स्वामी जी से प्रभावित होकर अन्य कई सांसदों ने न केवल हिन्दी में हस्ताक्षर करने प्रारम्भ किये, अपितु हिन्दी में कार्यवाही भी मुद्रित होनी प्रारम्भ हो गई।

संसद का एक संस्मरण कुछ समय पूर्व आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के पूर्व प्रधान डॉ. शिवकुमार शास्त्री जी ने मुझे सुनाया। वह इस प्रकार है-

स्वामी जी महाराज संसद में अपना भाषण प्रारम्भ करने से पूर्व वेदमन्त्र का उच्चारण किया करते थे। आज लोकसभा के साहित्य में सैकड़ों वेदमन्त्र मुद्रित हो चुके हैं। १३ अप्रैल १९६१ को जब लोकसभा में अंग्रेजी को अनिश्चितकाल तक सहभाषा के रूप में लाने का विधेयक सरकार ने रखा। स्वामी जी ने इसका पूर्ण विरोध किया। मार्शल द्वारा आपको बलपूर्वक संसद के शेष सत्र के लिए निकाल दिया, परन्तु धर्मधुनी स्वामी जी इतना अपमान

सहन करने के पश्चात् भी हिन्दी की रक्षा के लिये और दृढ़प्रतिज्ञ हो गये। भला परिश्रमी व्यक्ति कभी असफल होता है? अन्त में '**सत्यमेव जयते**' के आधार पर स्वामी जी की विजय हुई और सरकार को अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी का अनुवाद भी प्रस्तुत करने को स्वीकृति देनी पड़ी।

श्री स्वामी जी श्रमिक वर्ग के प्रति भी सहानुभूति रखते थे। चाहे वह खेत में हल चलानेवाला मजदूर हो या औद्योगिक क्षेत्र का सामान्य मजदूर। एक बार उनके संसदीय क्षेत्र यमुनानगर में श्री गोपाल पेपर मिल में मजदूरों पर अत्याचार हुए। स्वामी जी ने इस अत्याचार के विरोध में १० जनवरी से ४ फरवरी १९६४ तक पं. जवाहरलाल नेहरू प्रधानमन्त्री की कोठी पर धरना दिया।

आपने २६ अप्रैल १९६६ से १० मई १९६६ तक लोकसभा के प्रांगण में गोवध के विरोध में अनशन किया। आप ७ नवम्बर १९६६ को संसद भवन पर गोभक्त प्रदर्शनकारियों को सम्बोधित करते हुए गिरफ्तार कर लिए गये और आपको तिहाड़ जेल में नज़रबन्द कर दिया गया।

देश एवं आर्यसमाज की विषम परिस्थितियों ने इस बूढ़े सिंह को घायल किया। वृद्धावस्था के चिह्न स्पष्टतया दिखाई देने लगे, शरीर भी जर्जर हो गया। इसी बीच एक और वज्रपात हुआ कि उनका प्रिय शिष्य आचार्य पं. धर्मवीर शास्त्री, जो उनसे ४० वर्ष छोटे थे, जिसको उन्होंने पुत्रवत् पाला, पढ़ाया, अपना उत्तराधिकारी बनाया, वह दिवगंत हो गया। श्री स्वामी जी की शारीरिक क्षीणता के साथ-साथ उनकी मानसिक स्थिति भी खराब होने लगी। उनका स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता चला गया। डॉ. शिवकुमार शास्त्री जी ने बताया कि मैं ८ मई १९९० रात्रि के सात बजे आर्यसमाज गुड़गाँव में व्याख्यान देने के लिये जा रहा था कि गुरुकुल घरौण्डा के आचार्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी डॉ. देवव्रत जी का फोन आया कि श्रद्धेय स्वामी जी महाराज का नश्वर शरीर नहीं रहा। ९ मई १९९० को उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से किया गया।

देश के विभिन्न प्रान्तों में स्वामी जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रकट करने के लिये शोकसभाएं हुईं। संसद में उनकी स्मृति में मौन रखा गया।

श्रद्धेय स्वामी जी महाराज ने आर्यजाति की स्वतन्त्रता एवं अधिकारों की रक्षा के लिये जीवन भर संघर्ष किया। गुरुकुल प्रणाली को प्रचलित कर अपने गुरु के प्रेरणास्रोत, अपने मार्गदर्शक ऋषि दयानन्द जी को सच्ची श्रद्धाञ्जलि दी। अपने शिष्यों को विद्वान् बनाया।

स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती जी की रचित इस गीतिका की कुछ पंक्तियों से अपनी इस लेखनी को विराम दे रहा हूँ।

हे ब्रह्मन्! संसार में क्या यह समय होगा कभी।
ब्रह्मवर्चसी निज देशवासी विप्र गण होंगे कभी।।

वृष्टि समय पर हो सदा सब औषधि फूले फलें।
सब वस्तु से सम्पन्न हो सब वेदमार्ग पर चलें।।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर।

पढ़ाने में लाड़न नहीं करना योग्य है!

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते हैं, परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रखें। **(सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास २)**

आर्ष ग्रन्थों का पठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

विद्यार्थी जीवन

ब्र. प्रताप

विद्या प्राप्ति का अभिलाषी
व्यर्थ समय कभी न गँवाता है
गुरुजनों का करता आदर,
आदर्श विद्यार्थी वह कहलाता है।

मैं एक विद्यार्थी हूँ और विद्यार्थी जीवन पर कुछ लिखना चाहता हूँ। विद्यार्थी जीवन हमारी नींव होती है। यदि इस समय हमने कठोर परिश्रम कर लिया तो भावी जीवन अच्छी प्रकार व्यतीत होता है। जिस प्रकार भवन की नींव जितनी गहरी होगी उतना ही अधिक दिन भवन टिकता है। इसी प्रकार यदि हम अपने विद्यार्थी जीवन के समय अच्छी प्रकार परिश्रम कर लें तो जीवन आनन्दमय हो जाता है। परिश्रम के माध्यम से विद्यार्थी किसी विद्या में, किसी कला में पारङ्गत हो सकते हैं। विद्यार्थी जीवन में विद्यार्थी ब्रह्मचारी रहकर विद्याध्ययन करता जाए। प्राचीनकाल में ब्रह्मचारी गुरुकुल में जाकर आचार्य के सान्निध्य में रहकर विद्याध्ययन करता था, पर आज गुरुकुलों की संख्या कम होती जा रही है और जो इस समय में गुरुकुल हैं, उन गुरुकुलों में जाकर देखा जाए तो वेद-वेदाङ्ग तो कुछ ही ब्रह्मचारी पढ़ते हैं।

उन दिनों की बात है जिस समय भारत देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चल रहा था। एक दिन अनायास अचानक राष्ट्रीय नेता पं. जवाहरलाल नेहरू कनखल हरिद्वार के बीच में गुरुकुल कांगड़ी में पहुँच गये। उन्होंने रात्रि वहीं बिताई। वहाँ के प्राध्यापक जी से अनुरोध किया कि मुझे पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थियों से वार्तालाप करना है। उन्होंने पाँचवीं कक्षा के छात्रों को बुलवाया। उसी समय पण्डित जी बोले उनकी और मेरी वार्तालाप के समय कोई गुरुकुल का अध्यापक नहीं होगा। पाँचवीं कक्षा के ब्रह्मचारी तथा पण्डित जी की वार्ता प्रारम्भ हुई। पण्डित जी बोले बच्चो, आप लोग गुरुकुल में पढ़ रहे हो, तुम अपने जीवन में क्या बनना चाहते हो? तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है? प्रथम छात्र उठा और बोला मैं गुरुकुल में पढ़कर संन्यासी बनूँगा और देश समाज की सेवा करूँगा। मैं अपने राष्ट्र में नैतिक शिक्षा देने का प्रयत्न करूँगा। दूसरा छात्र बोला मैं पत्रकार बनूँगा। तीसरा विद्यार्थी बोला मैं बड़ा होकर एक ईमानदार व्यापारी बनूँगा और राष्ट्र को समृद्ध बनाऊँगा। इसी प्रकार एक के बाद एक ब्रह्मचारी उठे और अपने लक्ष्य को बताया कि कौन क्या करेगा? सब ब्रह्मचारियों से पण्डित जी की वार्ता समाप्त हुई तो मुख्य अध्यापक जी को बुलवाया और कहा मुझे बहुत प्रसन्नता अनुभव हो रही है कि आपके गुरुकुल में प्रत्येक विद्यार्थी अपने जीवन में कुछ न कुछ लक्ष्य लेकर अध्ययन कर रहा है। एक भी विद्यार्थी लक्ष्यहीन नहीं है, परन्तु दु:ख के साथ मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मैं कुछ दिन पूर्व एक विद्यालय (कॉलेज) में गया था। बातचीत हुई पर एक भी छात्र (विद्यार्थी) लक्ष्य लेकर नहीं पढ़ रहा था। जो अपने लक्ष्य के बारे में ही नहीं जानते, अवसर अनुसार जो होगा सो देखा जाएगा, बन जायेंगे। इस प्रकार आपके गुरुकुल की और आधुनिक शिक्षा की तुलना करने पर पता लगता है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी लक्ष्य धारण किए हुए हैं। विद्यार्थी जीवन में प्रत्येक विद्यार्थी का कुछ न कुछ लक्ष्य रखना अनिवार्य है। लक्ष्यहीन विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) का जीवन व्यर्थ है। लक्ष्यहीन जीवन विनाश की ओर ले जाता है, इसलिये यदि आपका लक्ष्य निर्धारित नहीं है तो अभी निर्धारित कीजिये और अपने लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अग्रसर हो जाइये। **बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि ले**, के अनुसार अभी परिश्रम करना प्रारम्भ कर दीजिये।

किसी ने साधु से पूछा जीवन क्या है? उत्तर मिला जीवन एक अपूर्ण स्वप्न है। पिंजरे में बन्द पक्षी से पूछा जीवन क्या है? उत्तर मिला स्वतन्त्रता ही जीवन है। एक सैनिक से पूछा गया जीवन क्या है? उत्तर मिला आगे बढ़ना ही जीवन है। एक वैज्ञानिक से पूछा जीवन क्या है? उत्तर मिला जीवन एक विचित्र आविष्कार है। एक प्रेमी व्यक्ति से पूछा जीवन क्या है? उत्तर मिला प्रेम ही जीवन है। एक मजदूर से पूछा भाई जीवन क्या है? उत्तर दिया परिश्रम करते रहना ही जीवन है। एक विद्यार्थी से पूछा

जीवन क्या है? उत्तर मिला विद्या ही जीवन है। एक माँ से पूछा जीवन क्या है? उत्तर मिला ममता ही जीवन है। सबकी सोच जीवन के बारे में अलग-अलग है। आप किसी भी महापुरुष की जीवनी उठा लें उन्होंने अपने समय में बड़ी कड़ी मेहनत की है, तब ही वे लोग आगे बढ़े हैं, तभी हमें उन्होंने सन्मार्ग बताया, स्वयं उन्होंने संसार के सुखों को छोड़ा, हमारे पास ज्ञान पहुँचाने के लिये मैं उन ऋषि मुनियों को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने सांसारिक सुखों को छोड़कर हमें ज्ञान-मार्ग बताया। **विद्वान्-यो विजानाति**- जो विद्वान्जन हैं, चिन्तक हैं, विचारक हैं, बुद्धिमान् हैं वही मनुष्य जानते हैं कि उन ऋषि-मुनियों का अति परिश्रम है। यदि किसी भी विद्यालय के विद्यार्थी या गुरुकुल के ब्रह्मचारी में कुछ करने की उत्साह उमङ्ग है तो वह कर सकता है, जिसे अटल विश्वास है वह अच्छे कार्यों में विलम्ब नहीं करता है। मानव जब जोर लगाता है तो पत्थर भी पानी बन जाता है। यदि कोई भी विद्यार्थी या गुरुकुल का ब्रह्मचारी अपने जीवन में उन्नति करना चाहता है तो उसे इन छः बातों को नितान्त छोड़ देना चाहिये।

नीतिकार ने कहा है-

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्य दीर्घसूत्रता।।

निद्रा= अधिक न सोना और न जागना। समय पर सोना और समय पर जागना

तन्द्रा= ऊँघना

भयं= भयरहित होना, डरना नहीं

क्रोध= क्रोध न करना

आलस्य= आलस्य नहीं करना चाहिये। प्रायः देखने में आता है कि बैठे-बैठे पढ़ाई करेंगे शय्या पर, तो आलस्य आयेगा ही। ब्रह्मचारी को आलस्य नहीं करना चाहिये।

दीर्घसूत्रता= कोई भी कार्य को देरी से नहीं करना चाहिये। जितना शीघ्र हो सके उस कार्य को उसी समय कर देना चाहिये यदि कोई विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) विद्या प्राप्त करने का इच्छुक है, तो उसे सांसारिक पदार्थ (सुख) को छोड़ना होगा। चाणक्य-नीति में कहा गया है।

सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।

सुखार्थी को विद्या विद्यार्थी को सुख छोड़ देना चाहिए।

अर्थात् सुख की इच्छा रखनेवाले को विद्या की प्राप्ति नहीं हो सकती है। विद्या की इच्छा रखनेवाले को सुख नहीं मिल सकता है। अतः सुख की कामना करनेवाले को विद्या का त्याग कर देना चाहिये तथा विद्या की प्राप्ति के लिये सुख का परित्याग कर देना चाहिये। प्रत्येक विद्यार्थी को विनम्र होना अति आवश्यक है। जो व्यक्ति या विद्यार्थी घमण्डी होता है उसका विनाश शीघ्र ही हो जाता है, जो व्यक्ति विद्यार्थी विनम्र होता है उसे सद्गुण, सांसारिक पदार्थ स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। कुछ विद्यार्थी थोड़ी सी विद्या प्राप्त कर अपने आपको बड़ा मानते हैं अब तो मुझसे ज्यादा कोई नहीं जानता है, उनकी गणना में एक मैं भी हूँ। कुछ दिन पहले मुझे पढ़ाते समय आचार्य जी ने एक सिद्धि बताई थी। मैंने सोचा यह शायद ही किसी को पता हो। तो मैंने कुछ समय बाद एक ब्रह्मचारी से पूछ लिया कि **पिबति** कैसे सिद्ध होता है, क्योंकि वह धातु पाठ पढ़े हुए थे उन्होंने बता दिया, कि **पा पाने** धातु से इसको **'वर्तमाने लट् सूत्र से लट्लकार में पाघ्राध्मा०** से **पा** को **पिब** आदेश होता है। इस सूत्र में ग्यारह ही धातुएँ हैं तथा ग्यारह ही आदेश हैं, परन्तु पिब आदेश अजन्त है अन्य १० धातुएँ हलन्त हैं तो यहाँ विशेष अतो गुणे से पररूप होता है यही विशेष है। मुझे लगा कि पूछना नहीं चाहिये था पर पूछ लिया तो घमण्ड दूर हो गया। मैंने सोचा मैं कितनी भी विद्या प्राप्त कर लूँ कभी भी अपने को बड़ा नहीं मानूँगा। इस संसार में एक से एक बड़े विद्वान् हैं विद्या से तो अभिमान या घमण्ड नहीं, नम्रता आनी चाहिये। किसी नीतिकार ने कितना सुन्दर कहा है-

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।

विद्या से विनम्रता आ जाती है और विनम्रता से मनुष्य योग्य बन जाता है और योग्य बन जाने के बाद धन मिलता है फिर वह मनुष्य धन से धर्मादि कार्यों का अनुष्ठान करता है, फिर सुख की प्राप्ति होती है। यदि कोई भी ब्रह्मचारी आनन्द चाहता है, प्रफुल्लित होना चाहता है तो विनम्र बने। जो व्यक्ति विनम्र होता है उसे कहीं भी भय, लज्जा, चिन्ता इत्यादि नहीं होते हैं। जो व्यक्ति विनम्र होता है, उसे प्रत्येक

स्थान पर सम्मान प्राप्त होता है। एक कवि ने कहा-

सबतें लघुताई भली, लघुता से सब होय।
जस द्वितीय को चन्द्रमा सीस नवै सब कोय।।

शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा प्रतिपदा को नहीं दीखता है, द्वितीया को लघु दीखता है। दूज के दिन चन्द्रमा को देखना शुभ मानते हैं जिस प्रकार वह बढ़ता है वैसे ही हम भी बढ़ें।

जो व्यक्ति अभिमानी होता है उसे प्रत्येक स्थान पर तिरस्कार ही प्राप्त होता है- किसी ने फुटबॉल से पूछा क्या कारण है कि तुम जिसके पैरों में पड़ती हो वही तुम्हें ठोकर मारता है। फुटबॉल ने कहा मेरे पेट में अभिमान की हवा भरी हुई है इसलिये लोग मुझे ठोकर लगाते हैं। जो भी व्यक्ति इस संसार में उन्नति, सम्मान प्राप्त करना चाहता है वह विनम्र बने। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है प्रात: सबसे पहले किसी से मिलते समय हाथ जोड़कर अभिवादन करे। यदि जीवन में संयम और सदाचार नहीं है तो पुस्तकों का ज्ञान कुछ काम में नहीं आता है।

आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ **पृष्ठ :** २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा **पृष्ठ :** ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर **पृष्ठ :** ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग **पृष्ठ :** २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बाहर का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी **पृष्ठ :** १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३

ÃUæÒÂ·¤ÚUè ¥ÂÙð ÂýÎðàæ ·¤è àæýðcÆ ÂéSÌ·¤ð´ ÀêÅU ÂÚU ©ÂÜŽÏ

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चारों भागों का मूल्य = १३००/-
डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:- दूरभाष - 0145-2460120

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है।

-सम्पादक

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१ से १५ अप्रैल २०२१ तक)

१. श्रीमती रामप्यारी देवी त्रिवेदी, भीलवाड़ा २. डॉ. बद्रीप्रसाद पञ्चोली, अजमेर ३. श्रीमती विमला एवं श्री लालचन्द यादव, श्रीगंगानगर ४. श्रीमती शिवकान्ता एवं श्री गणपतलाल तापड़िया, कोटा ५. श्री देवेन्द्र यादव, रेवाड़ी ६. श्री सञ्जय विरमानी, लुधियाना ७. श्रीमती उषा मरवाह, नई दिल्ली।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१ से १५ अप्रैल २०२१ तक)

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट २. श्री महेन्द्र चौधरी, अजमेर ३. श्री राजनाथ, अजमेर ४. श्री महेश कुमार जोशी, अजमेर।

अन्य प्रकल्पों हेतु सहयोग राशि

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट २. श्री सौजन्य गोयल, मुजफ्फरनगर ३. श्री मानसिंह आर्य, नई दिल्ली ४. श्री नाथूलाल त्रिवेदी, भीलवाड़ा ५. श्रीमती सुनीता आर्य, गुरुग्राम ६. श्री राजेश कुमार आर्य, गुरुग्राम ७. श्री सुनील मखीजा, गुरुग्राम ८. श्री जी.एन. गोसाईं, गुरुग्राम ९. श्री वेद मेहता, गुरुग्राम १०. श्रीमती सुमित्रा कालड़ा, गुरुग्राम ११. श्री प्रवीण कुमार टुटेजा, गुरुग्राम १२. श्री शीतलदत्त चावला, गुरुग्राम १३. श्रीमती इन्दु पाहुजा, गुरुग्राम १४. श्री हरीश कुमार अघी, गुरुग्राम १५. श्री नरेन्द्र नेहरा, गुरुग्राम १६. श्री जितेन्द्र बोकन, गुरुग्राम १७. श्री अजय आर्य, गुरुग्राम १८. श्रीमती आरुषि, गुरुग्राम १९. श्री राजसिंह मनवाला, गुरुग्राम २०. श्री हरीश कुमार वशिष्ठ, गुरुग्राम २१. श्री विनोद राजपाल, गुरुग्राम २२. श्रीमती विमला व श्री लालचन्द यादव, श्रीगंगानगर २३. श्री सुरेन्द्र कुमार, नई दिल्ली २४. श्री वेदप्रकाश मौदगिल, पञ्चकुला २५. श्री अरुण गुप्ता, नोएडा।

विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं।

(व्यवहार भानु)

‘सत्यार्थ प्रकाश’ एवं ‘महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र’ प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ ‘सत्यार्थप्रकाश’ आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति ‘वैचारिक क्रान्ति’ को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: ‘सत्यार्थ प्रकाश’ की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व ‘विश्व पुस्तक मेला’ दिल्ली में प्रतिवर्ष ‘सत्यार्थप्रकाश’ के साथ ‘महर्षि का जीवन-चरित्र’ एवं ‘आर्याभिविनय’ पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। ‘सत्यार्थप्रकाश’ ‘महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र’ के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ ‘सत्यार्थप्रकाश वितरण’ अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४